RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 10 प्रकाशन तिथि : 25 सितम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अक्टूबर 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

भौ नहीं हारूँ पण नहीं छोडूँ, एक पंथ जो पायो
जीत्याँ जस रा भारा म्हारै, इण सूं सीस झुकायो
जे हारूँ तो लाज तने है, दोनँ जूण उजाळा

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

श्री जवाहिर राजपूत छात्रावास जैसलमेर के पूर्व छात्र व पूर्व अधीक्षक, समाज की प्रत्येक गतिविधि में सक्रिय रहने वाले ऊर्जावान युवा सहयोगी तथा जैसलमेर जिला परिषद सदस्य प्रतिनिधि श्री उदय सिंह बडोड़ागांव को भारतीय जनता युवा मोर्चा (भाजयुमो) जैसलमेर के जिलाध्यक्ष बनने पर हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

उदय सिंह बडोड़ागांव

-: शुभेच्छु :-

उम्मेद सिंह बड़ोड़ा गांव, प्रयाग सिंह भैंसड़ा, विशन सिंह लौद्रवा, सुरेंद्र सिंह पोछिणा, उत्तम सिंह पिथला, बाबू सिंह खिरजा, हुकम सिंह पोहड़ा, राण सिंह दवाड़ा, साहिल सिंह बडोड़ा गांव, शम्भू सिंह छतागढ़, स्वरूप सिंह मोढ़ा

संघशक्ति

4 अक्टूबर, 2021

वर्ष : 57 अंक : 09

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	10
☞ पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	✍ श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	16
☞ महाराणा सांगा और बाबर को उनका निमंत्रण?	✍ संकलित	18
☞ क्षत्रिय का धर्म-अन्याय का प्रतिकार	✍ श्री नरेन्द्रसिंह नरधारी	24
☞ जदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	25
☞ मैं रोज डायरी लिखता हूँ	✍ कुं. मायावी	26
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी जगदात्मानन्द	27
☞ विचार-सरिता (पञ्चषष्टिः लहरी)	✍ विचारक	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

पूज्य नारायणसिंहजी की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के तीसरे संघप्रमुख पूज्य नारायणसिंहजी रेड़ा की जयन्ती 30 जुलाई को अनेक स्थानों पर मनाई गई। श्रद्धेय नारायणसिंहजी श्री क्षत्रिय युवक संघ के मापदण्डों से एक आदर्श स्वयंसेवक की प्रति मूर्ति थे। संघ के प्रति उनकी एकनिष्ठता अद्भुत थी। श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों की व्यवस्था को सुचारू रूप देकर शिविरार्थियों के लिए शिक्षण में रोचकता प्रदान की। सहज साधारणता के जीवन परिवेश से असाधारणता के आयाम छूने वाला उनका जीवन स्वयंसेवकों के लिए प्रेरणादायी और अनुकरणीय है।

आलोक आश्रम बाड़मेर में आयोजित जयन्ती कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर ने पू. नारायणसिंहजी के अनुकरणीय जीवन परिचय से अवगत कराया। संघप्रमुख माननीय लक्ष्मणसिंहजी बेण्यांकाबास ने सुबह मीडिया के माध्यम से प्रसारित अपने उद्बोधन में पूज्य श्री को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके प्रेरक जीवन का वर्णन किया। सायंकाल में संघशक्ति प्रांगण जयपुर में आयोजित कार्यक्रम को भी संघप्रमुखश्री ने सम्बोधित किया।

महाराष्ट्र संभाग में मुंबई, बैंगलुरु और पुणे-तीन अलग-अलग क्षेत्रों में वर्चुअल माध्यम से अलग-अलग कार्यक्रम हुए। मध्य गुजरात के सूरत प्रान्त की वीर दुर्गादास शाखा तथा तनेराज शाखा में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। अहमदाबाद ग्रामीण प्रान्त के काणेटी मण्डल में दरबार समाजवाड़ी तथा दरबारी चोरो में; साणन्द मण्डल रामजी मंदिर गोहिलसेरी, पीपण के दरबारी चोरो में; अहमदाबाद शहर के मेघाणी नगर स्थित अम्बाजी मंदिर में; आनन्द शहर के आर्य मंदिर में, गांधीनगर प्रान्त के पालज गाँव स्थित महाकाली माताजी के मन्दिर में, गोहिलवाड़ संभाग के नारी गाँव में, पाटण प्रान्त के मोटी चन्दूर तथा पाटन में; जाड़ी तहसील के धानेरा तथा पीलूड़ा में; सौराष्ट्र-कच्छ संभाग के गोंडल, गांधीधाम, गोदावरी तथा मोढवाणा में; गोहिलवाड़ संभाग के मोरचंद प्रान्त के खड़सलिया तथा अवाणिया में; भाल प्रान्त के पांची, धोलेरा तथा वल्लभीपुर में जयन्ती कार्यक्रम आयोजित हुए। मोरचन्द की महिला शाखा में; दियोदर राजपूत छात्रावास में, बनासकांठा प्रान्त के भीलाचल तथा रजोसण में भी जयन्ती मनाई गई।

जालोर संभाग के आहोर में; रेवदर स्थित राजपूत छात्रावास में; गोपाल राजपूत छात्रावास भीनमाल में, वीर दुर्गादास छात्रावास पाली में, पाली प्रान्त के गुड़ा चुतरा में, सोजत मण्डल के झुपेलाव में, महाराणा प्रताप शाखा सुमेरपुर में, जालोर संभाग के किलवा में, मेवाड़-मालवा संभाग के मंदसौर में घसोई (सुवासरा) में, मेवाड़-वागड़ संभाग के डूंगरपुर प्रान्त के गेहूंवाड़ा में, अम्बिका बाणेश्वरी राजपूत छात्रावास प्रतापगढ़ में, राजसमंद प्रान्त के मुछाला महादेव मंदिर स्थान में, अलख नयन मंदिर उदयपुर में, बांसवाड़ा के डांगपाड़ा छात्रावास में, श्री तनसिंहजी एकेडमी राजपूत होटल बांसवाड़ा में, भोपाल पब्लिक स्कूल चित्तौड़गढ़ में, आशापुरा माता मंदिर दशहरा मैदान कोटा में, अजमेर प्रान्त के सावर गढ में, भीलवाड़ा में, नारायण निकेतन बीकानेर के बज्जू में, रतनगढ़ में, पायली में, झंझेऊ शाखा में, रघुकुल राजपूत छात्रावास डूंगरगढ़ में, तनसिंहपुरा में, भादला में, गडरा रोड़ प्रान्त के बीजावल में, गुड़ामालानी प्रान्त के बूठ गाँव में, भवानी क्षत्रिय बोर्डिंग हाउस चोहटन में, राव चांपा शिक्षण संस्थान शिव में, बालोतरा संभाग के-थोब, कल्याणपुर, बालोतरा, रेवाड़ा, जेतमाल, टापरा, वरिया, सिणधरी, पादरू, चिड़िया, चांदेसरा, नौसर, पाटोदी तथा गिड़ा में स्मरांजलि दी; जैसलमेर स्थित तनाश्रम में, खुहड़ी, म्याजलार, बेरसियाला, जोगीदास का गाँव, झिंझनियाली, मुलाना, मोहनगढ़, रामगढ़, सोनू, पारेवर, पोकरण, देवीकोट तथा साकड़ा में; पूर्वी राजस्थान संभाग में जामड़ोली तथा बाढ मोचिंगपुरा में, जोधपुर में तनायन कार्यालय, राजेन्द्र नगर,

चौपासनी व जय भवानी नगर में; बेलवा शिविर में, कातर में, डीडवाना में, अमर राजपूत छात्रावास नागौर में; छापड़ा में; वर्चुअल माध्यम से दिल्ली एन.सी.आर. प्रान्त में जयन्ती मनाई गई।

दुर्गादास जी की जयन्ती :

वीर दुर्गादास क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति थे। ऐसे राष्ट्रनायक का जीवन प्रेरणादायी व अनुकरणीय होता है। उनके आदर्श जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष उनकी जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई जाती है। उनका जन्म श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, संवत 1695 तद्नुसार 13 अगस्त सन् 1638 को हुआ था। इस बार श्रावण शुक्ला चतुर्दशी 21 अगस्त को थी अत: 13 अगस्त से लेकर 21 अगस्त तक लगातार अनेक नए-नए स्थानों पर जयन्ती मनाई गई ताकि उनके आदर्श जीवन को जानने का अधिक से अधिक लोगों को सुलभ अवसर मिल सके।

13 अगस्त को सुबह संघप्रमुख श्री लक्ष्मणसिंहजी के वर्चुअल उद्बोधन के साथ जयन्ती कार्यक्रमों की शृंखला का प्रारम्भ हुआ। उसी दिन धानपुर (जालौर) में आयोजित कार्यक्रम को संघप्रमुखश्री के साथ कुछ वरिष्ठ लोगों ने भी सम्बोधित किया। उसी दिन भवानीनगर (बासनी), देचू, फलोदी, केतु, बस्तवा, बामणू, बेदू, खेजड़ला, पालड़ी सिद्धा, खारिया खंगार, जयपुर के बजरंग द्वार, रानीवाड़ा, सुमेरपुर, भिंयाड़, रामदेरिया, उण्डखा, मिठड़ा, आकदड़ा, पाटोदी, सिवाना, मुंबई की-तणेराज शाखा, नारायण शाखा तथा वीर दुर्गादास शाखा; धानेरा सरवाड़, दसूसर, विरान, भूकरका, पून्दलसर, मोतिगढ, सूरतगढ़, उज्जैन में दुर्गादास स्मारक पर, बालोतरा, जागसा, मेवानगर व गांधीनगर (गुजरात) में जयन्ती कार्यक्रम रहे।

14 अगस्त को हनवंत छात्रावास जोधपुर, जिनजिनयाला कलां, चोरड़िया, मालवीया नगर (जयपुर), मजादर, काणेटी, जेठानिया में जयन्ती आयोजित हुई। 15 अगस्त को वीर दुर्गादास शाखा गोडादरा (सूरत), आकोड़ा, बड़ीसिड्ड, शेखासर, खिन्दारा, कनकपुरा (जयपुर), जागीरदार कोटड़ी, डागिया मड़ाणा, देवीनगर (जयपुर), पांच्यावाला (जयपुर), दौसोद, झांपड़ावास, तनायन (जोधपुर), बेलवा, बेसलानियों का तला (बूठ), राठौड़ीपुरा, मुल्कीभवन, खेड़ा, कनीज में कार्यक्रम हुए। 16 अगस्त को सरदार छात्रावास (जोधपुर), चिरड़िया, भेड़, बेलवा राणाजी, आवड़ माता मंदिर, दादी का फाटक (जयपुर), चिरड़िया, धोबा, तेजमालता, घोरा, राजपूत भवन रानासिंहपेट (बैंगलोर) व असाड़ा में जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 17 अगस्त को खीमसर फोर्ट, मांचवा, बीजेएस कॉलोनी (जोधपुर), सेतरावा, गोपालसर, रामगढ, पद्मावती बालिका शाखा रावलगढ, पोकरण, रामदेवरा, मंगलम सिटी (जयपुर), सांचोर, वलदरा में कार्यक्रम आयोजित हुए। 18 अगस्त को दूदू, विजयनगर (जोधपुर), बस्तवा, बागोड़ा, म्याजलार, फलसुंड, रामसर में कार्यक्रम हुए। 19 अगस्त को नानुपुरी रामनगर (जयपुर), पड़ोली, ओमनगर नांदड़ी, बालसमंद, साथीन, गोता (सरखेज-गांधीनगर), कावतरा में कार्यक्रम हुए। 20 अगस्त को सिंहभूमि (जयपुर) दुर्गादास स्मारक (जोधपुर), जवाहर नगर केतु, गड़ा, बालेसर सत्ता, बालेसर दुर्गावता, खिरजांखास, तेना, नाहरसिंह नगर, भूंगरा, निम्बो का तला में कार्यक्रम रहे। देदूसर, कांखी, उदयपुर, नाहरमंगरा (डूंगरपुर), राजसमंद, भीलवाड़ा, परावा में भी कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

21 अगस्त को माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर के सान्निध्य में आलोक आश्रम बाड़मेर में कार्यक्रम आयोजित हुआ। उसी दिन संघ प्रमुखश्री ने डूंगरगढ़ तथा बीकानेर के कार्यक्रमों को सम्बोधित किया। उसी दिन संघशक्ति प्रांगण जयपुर में भी कार्यक्रम हुआ। इसके अलावा राजेन्द्रनगर, महावीर नगर व बासनी जोधपुर में, लोड़ता, खिंयासरिया, परेऊ, भाळू, बापीणी, तापू, जाखण, तिंवरी, देणोक, पंडितजी की ढाणी, भवानी छात्रावास चोहटन, समदड़ी, बालोतरा, सिमरलिया, सिसोदिया पाना गिडा, लापून्दड़ा, सिणधरी, जायल, नावां, सिवाड़ा, सीतामऊ (म.प्र.),

(शेष पृष्ठ 33 पर)

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर भवानी निकेतन जयपुर में माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा दिनांक 19.5.2013 को उद्‍बोधित प्रभात संदेश का संक्षेप।}

प्रार्थना से कुछ समय पूर्व आप में से कुछ स्वयंसेवकों से प्रश्न पूछा गया था कि आप कौन हैं? कुछ स्वयंसेवकों ने कोई उत्तर नहीं दिया, कुछ स्वयंसेवकों ने कहा-मैं नहीं जानता। क्यों? क्योंकि प्रश्न ही बड़ा अटपटा था। सब जानते हैं कि आप कौन हैं, पूछने का अर्थ यह नहीं है कि मुझे जानते नहीं। मेरा नाम, मेरा गाँव और मेरे बारे में बहुत कुछ जानते हैं, फिर भी पूछा जा रहा है कि मैं कौन हूँ, तो मेरे उस परिचय के बारे में तो मैं स्वयं भी नहीं जानता। प्रश्न बड़ा अटपटा लगा पर यह प्रश्न तो मानव जाति के लिए शाश्वत प्रश्न है। आदिकाल से चला आने वाला प्रश्न यह है कि मैं कौन?

व्यक्ति स्वयं इस प्रश्न का उत्तर खोज नहीं पाता इसलिए जो इस प्रश्न का उत्तर जानना चाहते हैं वे आप्त पुरुष के पास जाकर, जिसने इस प्रश्न के उत्तर को जान लिया है, ऐसे पुरुष के पास जाकर, उसके चरणों में बैठकर पूछते हैं, उत्तर जानने का प्रयास करते हैं कि मैं कौन हूँ? मेरा लक्ष्य क्या है? मैं कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है? हमें मानव जीवन क्यों मिला है? यह हमारे पूर्व जन्म के प्रारब्ध का कारण है या किसी विशेष कृपा के रूप में मिला है?

श्री क्षत्रिय युवक संघ हमारे लिए सद्‍गुरु है। यह आप्त पुरुष की सत्ता है। पूज्य तनसिंहजी ने ईश्वर की कृपा से, अपने प्रारब्ध से, अथवा इस कौम के प्रारब्ध से या अपनी तपस्या से इन प्रश्नों का उत्तर खोजा। जो उत्तर उन्होंने खोजा वह श्री क्षत्रिय युवक संघ में बताया। उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान से श्री क्षत्रिय युवक संघ लाभान्वित हुआ। वही ज्ञान क्षत्रिय युवक संघ की प्रशिक्षण व्यवस्था में प्रवाहित हो रहा है। पूज्य तनसिंहजी द्वारा प्राप्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हम आते हैं। उस ज्ञान को जानना, सीखना और जीवन में उतारना, इस प्रक्रिया से हम शिविरों में गुजरते हैं।

संसार मिथ्या है, यही संत पुरुष कहते हैं। संसार में माया व्याप्त है जो स्वयं परमेश्वर की ही लीला है इसलिए उसका प्रभाव बड़ा प्रबल है। व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने में लगा हो, वह भी इस माया के प्रभाव में जब आता है तो प्राप्त ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। हम शिविरों में जानकारियाँ प्राप्त करते हैं, उन्हें सीखने अर्थात जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। हमें भी संसार में रहना है जहाँ माया का साम्राज्य व्याप्त है। हमारा मन यदि उस माया में रम जाए तो जो कुछ हमने पाया, हमने सीखा वह भुला सकता है।

चंचल मन माया में न रमे और हम उस पर पूरा नियंत्रण रख पाएँ-इसके लिए भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में उपाय बताया है-अभ्यास और वैराग्य। चंचल मन बड़ी कठिनता से वश में रहता है पर अभ्यास और वैराग्य से इसे नियंत्रित किया जा सकता है। जो हमको सीखना है, उसका बार-बार अभ्यास करने से धीरे-धीरे मन उसमें ही रमना प्रारम्भ कर देता है। दूसरी तरफ जिनसे हमारा राग है, उस राग को तोड़कर उससे वैराग्य (विराग) बनाने का भी अभ्यास चलता रहे। मन चंचल स्वभाव वाला होने से भटकाने का प्रयास करता है लेकिन जागृत रहें, सजग रहें तो भटकाव से बचते रहेंगे। बार-बार जीवन में जड़ता आ सकती है साधना के प्रति, उस जड़ता को दूर करते रहना होगा। अभ्यास और वैराग्य को धारण कर साधनारत रहेंगे तो जीवन सार्थक बनेगा। परमात्मा की ओर से सदैव जागरूक रखने की प्रेरणा मिलती रहे यही आज के प्रभात की मंगल कामना है। ❑

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

कैसा अद्भुत, निराला व गौरवपूर्ण इतिहास था हमारा और कितना संघर्षपूर्ण। कभी चैन से बैठे ही नहीं, ऐसा इतिहास रचा, जिसका कोई सानी ही नहीं। हमारे समाज का ऐसा गौरव था, जो काल की गति के साथ गिर गया कैसे, समय के प्रवाह में बह गया कैसे? पूज्य श्री तनसिंहजी की आप बीती में समाज की दशा का दिग्दर्शन है, उनकी स्थिति का चित्रण किया गया है, उन्हें उकेरा गया है।

सर्व सम्पन्न समाज, जिसके पास सब कुछ था, वह काल चक्र में साधनहीन बना दिया जाता है, जिसके पास अब कुछ भी नहीं बचा। उसके पास जो कुछ था, वो सब चला गया या उससे छीन लिया गया। समाज का जो आजीविका का साधन था, उनसे छीन कर उन्हें भिखारी के कगार पर ला खड़ा कर दिया। समय के थपेड़ों में समाज क्या का क्या हो गया। समाज की स्थिति चरमराकर भिखारी-सी बन गयी, जिसका वर्णन पूज्य श्री तनसिंहजी ने आप बीती में किया है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने समाज बन्धु को सम्बोधित करते हुए कहा, उनकी ही जुबानी–

''मेरे बन्धु भिखारी! मैं मानता हूँ, काल ने तुम्हें भिखारी बनाकर सबसे बड़ी निर्लज्जता की है। रक्तहीन क्रान्ति कोई अनोखी वस्तु नहीं है, भारत में अनेक बार ऐसी क्रान्तियाँ हो चुकी, पर आज की क्रान्ति ने तुम्हें संसार की उच्चतम अवस्था से गिराकर निम्नतम अवस्था में पटक दिया है। इतिहास में काल ने जब कभी त्याग और बलिदान की माँग की, उस माँग को पूरा करने के लिए तुम्हारी परम्परा ने अचिन्त्य बलिदान किए, अद्वितीय वीरता और साहस के उदाहरण रखे, बिना सिर लड़ते रहना, जीवित चिताओं में जल जाना और मरने के समय केशरिया बाना पहनकर हँसी खुशी से देश धर्म पर बिना एक कदम भी पीछे हटाये सर्वस्व उत्सर्ग करने की निराली परम्परा के तुम जन्मदाता हो। संसार की किसी भी जाति का ऐसा कोई भी इतिहासकार नहीं है, जिसने तुम्हारे शौर्य, चरित्र, महानता और वीरता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा न की हो। स्वयं शत्रु भी श्रद्धा से नतमस्तक होता था।

भुलाये न भूले, सदियों पुराने, याद आ रहे हैं बीते जमाने।।
कभी वेद विद्या की शक्ति से था जीता
कभी ज्ञान ध्यान और भक्ति से भी जीता
कभी जग को जीता सुशासन के द्वारा
प्रलय से डूबा हमारा सितारा
बिना पंख ऊँची भरी थी उड़ाने।। याद.....

ऐसा उज्ज्वल इतिहास जिसका हो, वह भिखारी कैसे बन गया? आओ, मेरे भिखारी! आज अपन इस बात पर थोड़ा विचार करें।''

समाज की इस गिरती दशा पर विचार करें तो पायेंगे कि आज हमारे समाज की जो दशा बनी है, इसके कई कारण हैं, जिसमें एक कारण तत्कालीन सरकार की बदले की भावना व बदनियति साफ जाहिर होती है। तत्कालीन सरकार की आँखों की किरकिरी बना राजपूत समाज एक ऐसी आर्थिक क्रान्ति के दौर से गुजरा जिसने इस कौम को आर्थिक दृष्टि से पंगु बना डाला। यह क्रान्ति राजूपत समाज के लिए अभिशाप बनकर आयी। सत्ता में बैठे दुश्मनों ने इस कौम के विरुद्ध दुष्प्रचार करके राजनैतिक क्षेत्र में भी इन्हें हाशिये पर ला खड़ा कर दिया।

एक कारण यह भी है कि राजपूत समाज से रंजिश व द्वेषभाव रखने वाला बुद्धिजीवी वर्ग राजपूत जाति के विरुद्ध जहर उगलने लगा। इस बुद्धिजीवी वर्ग ने आम जन को राजपूतों के विरुद्ध बरगलाने, बहकाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राजपूतों की छवि धूमिल करने के लिए इस बुद्धिजीवी वर्ग ने राजपूत जाति के खिलाफ आम जन के दिमाग में जहर घोलने में कोई कमी नहीं छोड़ी।

दिल से पाक साफ व उदार इस कौम को कुटिल

बुद्धिजीवी व पूंजीपति वर्ग ने बहला-फुसला कर इन्हें भ्रमित कर अपने ही समाज के लोगों से अलग-थलग कर इनका शोषण किया है और करते जा रहे हैं। यह भी इस कौम का दुर्भाग्य है।

हमारे समाज की इस दशा के कारण वे लोग तो हैं ही जो हमसे द्वेष-भाव रखते हैं, पर हमारे समाज में भी ऐसे तत्त्व मौजूद हैं जो अपने ही समाज के दुश्मन बने हुए हैं और उन्हें खोखला करने में लगे हुए हैं। ऐसे लोग बातें तो समाज हित की करते हैं, पर अपने स्वार्थ के लिए समाज का सौदा करने में भी नहीं हिचकते। हमारे समाज में विभीषणों की भी कमी नहीं है, जो शत्रु से मिलकर इस कौम के सर्वनाश का कारण बनते आये हैं। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने समाज बन्धु को सम्बोधित करते कहा-उन्हीं की जुबानी -

''मेरे भिखारी भाई! मैं अत्यन्त विषम परिस्थितियों में बढ रहा हूँ। हमें कमजोर समझ कर जो हमारा शोषण करने के लिए बहुत उत्सुक हैं, उन्होंने आपस में एकता स्थापित करली है। जी जान से वे लगे हैं हमारा उन्मूलन करने। केवल आर्थिक नाकेबन्दी और राजनैतिक निष्कासन ही हमें उपहार में नहीं मिला है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सम्पत्ति पर भी हाथ मारा जा रहा है। उनसे तो यही उम्मीद थी, लेकिन मेरे भाई! तुमसे यह कभी उम्मीद नहीं थी कि तुम भी उनकी आवाज में बोलना शुरू कर दोगे। तुमसे तो सक्रिय सहयोग की उम्मीद थी, पर तुम तो मेरे हर कार्य में टाँग अड़ा रहे हो।''

हमारे समाज में ही कुछ असामाजिक तत्व हैं, जो अपने ही इस समाज के बिखराव के कारण हैं। ऐसे तत्वों ने समाज में एक दीवार खड़ी कर रखी है-अमीर और गरीब की, इस भेद के कारण समाज कभी एक नहीं हो पाया और इसका फायदा सदैव हमसे नफरत करने वाले तत्वों ने उठाया। पूज्य श्री तनसिंहजी राजपूत समाज को संगठित करने के हिमायती थे, इसलिए पूज्य श्री ने एक संगठन बनाया जो संपूर्ण राजपूत समाज के हित में था, पर अमीर लोग इस बात में उलझे हुए रहे कि इसका अगुआ एक साधारण व्यक्ति है। पूज्य श्री तनसिंहजी का जन्म एक साधारण घर में हुआ, इसलिए उनके द्वारा खड़ा किये गये संगठन को अमीर लोग पचा नहीं सके। इसी वजह से श्री क्षत्रिय युवक संघ के वे कभी हिस्सा नहीं बन पाये। अमीर घराने के लोगों के लिए सामान्य राजपूत अछूत थे और अछूत ही बने रहे। राजपूत-राजपूत में भेद कर दिया गया। अपने इन सामान्य भाइयों के प्रति उन अमीर दिलों में अपनत्व का भाव कभी जगा ही नहीं। यह राजपूत कौम का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?

अमीर घराने के लोगों के लिए सामान्य राजपूत अछूत क्यों? जो अमीर घर में जन्मा, उन्हें श्रेष्ठ व बड़ा मान लिया गया और जो साधारण घर में जन्मा, उन्हें नेष्ट व छोटा मान लिया गया। अमीर और गरीब के बीच की इस दीवार ने राजपूत कौम को बाँट के रख दिया, राजपूत-राजपूत में भेद कर दिया। अमीर घराने के लोगों ने सामान्य घर में जन्मे राजपूतों को हमेशा अपने से छोटा माना, कभी बराबरी का दर्जा नहीं दिया, चाहे वे उनसे हर क्षेत्र में श्रेष्ठ ही क्यों न हो? वे उन्हें तो हमेशा छुट भाई ही मानकर चले हैं। इस भेद ने राजपूत कौम को कभी एक नहीं होने दिया। पूज्य श्री तनसिंहजी इस भेद को मिटाकर इस कौम को एक करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की।

गरीब और अमीर को लेकर समाज में जो हवा है, उसे स्पष्ट करते हुए, रहीस जादों को सम्बोधित करते पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''मैं आज तक हैरान हूँ कि जीवन के सभी क्षेत्रों में तुमसे अधिक सिद्धि प्राप्त करके भी मैं साधारण (गरीब) ही कहलाता हूँ और तुम रहीस (अमीर) ठहरे! शायद यह लक्ष्मी और धन का कारण हो, तो मैंने पढ़ने-लिखने के बाद धन कमाना भी शुरू किया। नया मकान बनवाया, एक मोटर खरीदी, रेडियो लिया, तुम्हारी तरह मैंने धन के क्षेत्र में भी दौड़ लगाई। राजनैतिक क्षेत्र में भी अच्छा-

खासा ही नहीं, एक तपस्वी नेता बन गया, फिर भी समझ में नहीं आता, मैं साधारण सामान्य ही कहलाता हूँ और तुम रहीस क्यों कहलाते हो? हाँ तो एक ही कारण हो सकता है कि तुम रहीस जादे हो और मैं एक साधारण घर में जन्मा हुआ स्वयं एक साधारण हूँ।

''मैं एक साधारण सामान्य के घर जन्मा हूँ। मैं तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व भी दे दूँ, तो भी तुम सिर हिलाते रहोगे। मेरी जगह कोई राजा रहीस होता, तो तुम बोलते नहीं। मैं जोगणा क्यों हूँ, क्योंकि मैं तुम्हारे घर का जोगी हूँ, पर इसका तो मेरे पास इलाज नहीं। यदि गुण और कर्म से कोई बड़ा बन सकता है, तो मैंने इसी सम्भावना पर तुम्हारा हृदय जीतने के लिये अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी है, देखता हूँ, यह कारण कब तक रहता है?''

रहीस जादे समाज के कभी हिमायती नहीं रहे। इन्होंने समाज को कभी तवज्जो नहीं दी, इनके लिए समाज कुछ नहीं है। ये तो अपनी झूठी शान और अहंकार के कारण रहीसी (अमीरी) नशे से बाहर कभी आये ही नहीं, सदैव रहीसी नशे में चूर बने रहे। रहीसी नशे में चूर-चूर इन रहीसजादों ने अपने गरीब भाइयों को भाई कभी माना ही नहीं। इनके जीवन में गरीब भाई कभी आये ही नहीं, इनके दिल में गरीब भाइयों को कभी जगह मिली ही नहीं। झूठी शान और अहंकार में चूर ऐसे तत्वों के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी -

''भाई साहब! मैंने एक संगठन किया है और वह संगठन है, हम राजपूत लोगों का। इस बात को सोचे बिना कि वह संगठन तुम्हारे और तुम्हारे हित के लिए है, तुम केवल इस बात में उलझे हुए हो कि इसका अगुआ एक साधारण व्यक्ति है, तो भाई साहब! साधारण व्यक्ति तो मुझे भगवान ने बना दिया, तुम्हारी बराबरी तो कैसे कर सकता हूँ? पर सच मानो, तुम भी अब साधारण व्यक्ति के सिवाय कुछ नहीं हो। एक मनोवैज्ञानिक पृथकता के सिवाय और कोई भेद नहीं, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारी नरभक्षी आदत के कारण तुम इस भेद को बनाये रखना चाहते हो, ताकि तुम अब भी अपने आपको बड़ा भाई कहकर अपना जी बहला सको।''

झूठी शान और अहंकार पालने वाले संगठन से तो क्या जुड़ेंगे? ऐसे व्यक्तियों के जहन में समाज हित नहीं, अपना स्वार्थ है। ये गरीब राजपूत भाइयों की कमाई पर डाका डालकर अपना महल खड़ा करने में लगे रहते हैं। ऐसे लोग अपने स्वार्थ के लिए समाज को दाव पर लगाने में नहीं चूकते। पूज्य श्री तनसिंहजी ने ऐसे ही एक स्वार्थी तत्व के बारे में बताया, जो अपने ही राजूपत भाइयों के हितों पर कुठाराघात करने में नहीं चुका। जानिये पूज्य श्री के ही शब्दों में -

''मुझे सबसे अधिक दुःख तो भाई साहब! तुम्हारी इस बात से है कि तुमने इन राजपूतों के कमाई के साधनों तक का भी दान कर दिया। जरा सोचो तो बदले में तुम्हें क्या मिला-राज्य परिषद की सदस्यता? इस छोटी-सी बात के लिए तुमने कितने बेगुनाह राजपूतों की जिन्दगी से खिलवाड़ की है। काश! तुम यह समझ पाते कि तुमने ऐसा जघन्य पाप किया है जिसका प्रायश्चित कभी नहीं हो सकता।''

(क्रमशः)

आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास सदा से मित्रता, वंश, सिफारिश और धन से अधिक प्रभावशाली रहे हैं, संसार में आत्मविश्वास उत्तम पूंजी है। इससे अधिकांश बाधाएँ दूर हो जाती हैं, अधिकतर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है। आत्मविश्वास के द्वारा जितने महान सहास के कार्य सम्पन्न होते हैं, उतने अन्य किसी भी मानवीय गुण के कारण नहीं होते।

- स्वेट मार्डेन

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–97

मैं नवधा भक्ति द्वारा अपनी सत्ता के स्वामी कोटि–कोटि ब्रह्माण्डनायक परमपिता परमेश्वर के विमल चरणों में अपनी तुच्छ साधना के सुमन निरंतर चढाता रहूँ। कर्म से उसके कार्य का निमित्त बनने का प्रयास करता रहूँ। तब ईश्वरीय दया से मेरी साधना में उस शक्ति का आविर्भाव होगा जो मुझे शुद्ध आध्यात्मिक आसन पर आरूढ कर आवागमन से मुक्त कर देगी।

साधना के सुमन चढाऊँ परमेश्वर को।
शक्ति बढे साधना की, करूँ नमन ईश को।।

साधक इस अवतरण में नवधा भक्ति की बात करते हैं। नवधा भक्ति अर्थात् नो प्रकार की भक्ति। लोक में, समाज में नवधा भक्ति के बारे में जो मान्यताएँ (धारणाएँ) हैं और परम्परा है, उससे कुछ अलग प्रकार की भक्ति का संकेत करते हैं, ऐसा कह सकते हैं। नवधा भक्ति के बारे में सामान्यतया जो मान्यता है, उसकी चर्चा हमें यहाँ नहीं करनी है।

एक प्रार्थना की पंक्ति है–'तुझे भाये और तेरे कामों में मति हो'। साधक कहते हैं–'कर्म से उसके कार्य का निमित्त बनने का प्रयास करता हूँ।' अर्थात् मैं जो कार्य करता हूँ वह ईश्वरीय कार्य है। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ, साधन हूँ। इस कार्य द्वारा मैं निमित्त बनकर जो कार्य कर रहा हूँ उसमें परम ईश की शक्ति का आविर्भाव होगा। यानी कि इस कार्य की शक्ति बढेगी, प्रभाव बढेगा। इतना ही नहीं समाज, लोग इस कार्य की ओर आकर्षित होंगे। किसी भी कार्य में, प्रवृति में जहाँ ईश्वरीय शक्ति का आविर्भाव हो, उस कार्य की ओर, प्रवृति की ओर ध्यान खिंचता है। लोग उस कार्य में, उस प्रवृति में सहयोग देने उमड़ते हैं। यहाँ प्रवृति है श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति। आकर्षण की यह बात आज नहीं तो कल साबित होकर रहेगी। इस प्रवृति के पीछे स्व. पूज्य तनसिंहजी की शक्ति, भक्ति, साधना, तप और पुण्य समाहित है। ऊपर से ईश्वरीय आशीर्वाद के साथ सक्रिय सहयोग भी देखने को, अनुभव करने को मिलता है। आज भी संचालक, कार्यकर्ता, ईश्वर में अटूट श्रद्धा–विश्वास रखकर, यह कार्य ईश्वरीय कार्य है, ऐसा मानकर निष्ठापूर्वक सच्चाई से कार्य करते हैं। इस श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा और सच्चाई के उगने के संकेत भी प्राप्त हो रहे हैं। इस बारे में ज्यादा नहीं कहना है।

इस प्रवृति के कार्य का फल क्या? ऐसा प्रश्न किसी के लिए भी स्वाभाविक होगा। साधक इसका उत्तर अवतरण के अन्तिम वाक्य में दे रहे हैं। गहनता से देखें तो उत्तर खूब उत्साह प्रेरक और आनन्दप्रद रहेगा। प्रवृति से समाज का उत्थान, प्रगति, विकास और श्रेय तो होना ही है। साथ–साथ प्रवृति में सक्रिय व्यक्ति को अमूल्य फल प्राप्त होगा। ऐसा सभी संपूर्ण श्रद्धापूर्वक मानते हैं। वह फल है–आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति।

आध्यात्मिकता क्या है? कैसी प्रवृति, व्यवहार और वर्तन हो जिसे आध्यात्मिक कहेंगे। इस बारे में चर्चा करेंगे तो विस्तार बढ जाएगा। पर इतनी सी जानकारी तो सबको होनी ही है कि आध्यात्मिक मार्ग ईश्वर प्राप्ति का, मोक्ष पाने का, आवागमन से छूटने का मार्ग है।

साधक अन्तिम वाक्य में कहते हैं–'जो मुझे शुद्ध आध्यात्मिक आसन पर आरूढ कर आवागमन से मुक्त कर देगी'। इस प्रवृति में सच्चाई, प्रेम, निष्ठा और श्रद्धापूर्वक कार्य करने वाले आवागमन से मुक्त हो जाएँगे। यानी जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। यह बात शास्त्र सम्मत है। क्षात्रधर्म का पालन मुक्ति का, मोक्ष का मार्ग है।

सामाजिक दृष्टिकोण से भक्ति, मुक्ति, मोक्ष शब्द हमें भाते हैं, हमारे में उसका आकर्षण भी है पर व्यवहार में उसका दर्शन दुर्भाग्य से खूब कम होता है। हम संकल्प करें कि हम क्षात्रधर्म के पालन द्वारा, इस मार्ग के मुसाफिर बनकर मुक्ति, मोक्ष प्राप्त करें।

अर्क– मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य मोक्ष।

अवतरण–98

केवल शक्ति का संचय मनुष्य को अवसरवादी और सिद्धान्त पतित बना देता है, पर शक्ति के साथ दृढ़ता की प्राप्ति से मनुष्य सैद्धान्तिक आग्रह के उस उच्च धरातल पर पहुँच जाता है जहाँ से पतन और कर्तव्य–विमुखता के मार्ग निकलते ही नहीं। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृढता के अभ्यास में सर्वतोमुखी अजेय शक्ति का अभ्यास उसी प्रकार अन्तर्निहित है जिस प्रकार ईश्वर की विराट सत्ता में समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति।

अभ्यास के साथ बढे दृढता। दृढता के साथ मिले सफलता।

इस और गत अवतरण में साधक की खूब ऊँची भूमिका का दर्शन होता है। इस भूमिका को समझने के लिए किसी आध्यात्मिक मार्ग के प्रवासी या साधक का मार्ग दर्शन मिले तो सरलता से समझ सकें।

साधक का आशय है कि भक्ति रहित शक्ति मनुष्य को तर्कवादी और सिद्धान्तभ्रष्ट बना देती है। व्यवहार में हम अनुभव करते हैं कि कुछ एक तर्कवादी सिद्धान्तभ्रष्ट मनुष्य, आसुरी प्रवृति वाले, अन्य लोगों को परेशान करने की प्रवृति में मदमस्त रहते हैं। कारण? उनके पास शक्ति है, किन्तु आदर्श, सिद्धान्त का अभाव होता है।

मनुष्य शक्तिशाली बने, उसके पास धनबल, जनबल या शारीरिक बल बढे, तब शक्ति के शस्त्र का कहाँ प्रयोग करना है, कब प्रयोग करना है और क्यों प्रयोग करना है, इस बारे में विचार चाहिए। इस विचार द्वारा ही मनुष्य ध्येयलक्षी, सिद्धान्तवादी बनकर अपने ध्येय में, सिद्धान्त में दृढ बनता है। ऐसा दृढ ध्येयनिष्ठ मनुष्य पतन के, कर्तव्याभिमुखता के मार्ग पर कभी नहीं चलता।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृढता के अभ्यास के द्वारा मनुष्य कितनी बड़ी शक्ति प्राप्त करता है, यह समझाने का प्रयास किया है। ऐसे दृढव्रती मनुष्य में अजेय शक्ति और शक्ति का अभ्यास ऐसे घुला–मिला रहता है जैसे 'ईश्वर की विराट सत्ता में समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति है'। बहुत गहरी बात कह दी। क्या समझ पाए? इसे समझने के लिए एक अच्छा सा भजन यहाँ रखकर मुक्त होता हूँ, ज्यादा विवेचन नहीं करना।

हे तात्! जगत नियंता महिमा तेरी अपार,
योगी, यति बिचारे थक गए करके विचार।
ब्रह्माण्ड यह रचा है तेरी महाकला से,
आकाश किया अमाप जिसका नहीं किनारा।
लाखों ग्रह प्रकाशित तेरे अतुल बल से,
तू ही रवि शशि को गगन में घुमाने वाला।
वायु सदा बहता है तेरे अपार बल से,
अग्नि तप रही है, वह भी प्रताप तेरा।
तेरी सहज कृति से पृथ्वी प्रचण्ड-पहाड़,
प्रगटे महासमुद्र नदियाँ बहें हजार।
पक्षी, पशु और कई वृक्षों, फलों व फूलों से,
शृंगार किया प्रभु तूने सृष्टि का बाजार।
ऐसे अजब जगत को पैदा करके तूने पाला,
अन्त में अहो! बने तू सकल संहारने वाला।
तेरी अगाध लीला सकें थोड़ा सा न जान,
किन्तु तू सकल जगत के मन को जानने वाला।
तेरी गति समझने तेरा सुनाम भजने को,
हे तात्! दया कर दे सुमति और सुविचार।
हे कृपा निधान! तेरा भाव से भजन करने,
पुण्य कमा के 'हरी' मैं भवन तैर जाने वाला।

हम संकल्प करें उसकी गति को समझने, सुनाम भजने, सुमति और सुविचार प्राप्त करने का।

अर्क– जगत ईश्वर में समाहित है, ईश्वर जगत में समाहित है।

अवतरण–99

अपने विरोधियों को पराजित करने के लिए शक्ति की अपेक्षा दृढता अधिक आवश्यक है। दृढता

की चट्टान से टकराकर विरोधी तरंगें उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार काल से टकराकर जीवन। इस दृढता-प्राप्ति का सरलतम साधन है अभ्यास की पुनरावृत्ति। अतएव साधक को आत्म-स्वीकृत साधना का परित्याग कर नवीनता के लिए इधर-उधर भटक जाना नहीं चाहिए, नहीं तो सौ वर्ष उपरान्त भी वह उसी बिन्दु पर रहेगा जहाँ से उसने सबसे पहले साधना-यात्रा प्रारम्भ की थी।

स्वसाधना छोड़कर नये, अच्छे के लालच में।
भटकते यहीं वहीं वे तृण की तुलना में।

इस अवतरण में साधक ने विरोधियों को पराजित करने के लिए शक्ति की बजाए दृढता की आवश्यकता को समझाकर दृढता प्राप्त करने के उपाय बताकर, उनसे होने वाले लाभ समझाने के बाद दृढता छोड़कर कुछ नया प्राप्त करने के लालच में यहाँ-वहाँ भटकना नहीं चाहिए ऐसा बताया है।

शक्ति और दृढता के बीच दृढता का मूल्य ज्यादा समझाकर वैसी दृढता प्राप्त करने का सरलतम उपाय बताते हैं-अभ्यास की पुनरावृत्ति। उसके बाद जो बात कहते हैं, वह ज्यादा उपयोगी और महत्त्व की है।

मनुष्य को स्वयं द्वारा स्वीकार की हुई साधना प्रवृति, विचार या पद्यति को ही पकड़े रहना चाहिए। नया तथा ज्यादा अच्छा ढूंढने का परिश्रम, माथापच्ची करके यहाँ-वहाँ भटकना नहीं चाहिए। ऐसा करने से कहावत के अनुसार-'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' वाली स्थिति बन जाती है। स्वयं की पसंद की साधना-पद्यति छोड़कर नयी, ज्यादा अच्छी साधना की खोज में भटक जाता है। तब अपनी पसंद की साधना-पद्यति छूट जाती है और नया या अच्छा कुछ भी प्राप्त नहीं होता। नया कुछ मिला नहीं और जो था वह भी छूट गया।

भटकने वाला कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए साधक जो कहते हैं वह गहराई से समझने जैसा लगता है-'साधक को आत्म स्वीकृत साधना का परित्याग कर नवीनता के लिए इधर-उधर भटक जाना नहीं चाहिए, नहीं तो सौ वर्ष उपरान्त भी वह उसी बिन्दु पर रहेगा जहाँ से उसने सबसे पहले साधना-यात्रा प्रारम्भ की थी'।

सामान्यतया हमारे क्षत्रिय समाज का मानस दृढ और स्थिर कम देखने को मिलता है। साधना की प्रवृति की बात एक तरफ रखकर काम, धंधा, व्यवसाय और नौकरी के बारे में सोचें तो बड़े पैमाने पर लोग यह नहीं, दूसरा ज्यादा अच्छा ढूंढते फिरते मिलते हैं।

अवतरण का सार और सुर दृढता, स्थिरता द्वारा प्राप्त होने वाली सफलता प्राप्त करने के लिये है। तभी जीवन सार्थक और उपयोगी हो सके। व्यक्तिगत रूप से या सामाजिक क्षेत्र में इस मंत्र या सूत्र 'दृढता-स्थिरता' को जीवन-मंत्र बनाकर जीयें तो, व्यवहार में लायें तो इच्छित प्राप्त किया जा सकता है। दृढता और स्थिरता प्राप्त करके जीवन में सफलता प्राप्त कर समाज को सुदृढ और सफल बनाने का हम संकल्प करें।

अर्क- धीर और अडिग आदमी सफलता को प्राप्त करता है।
अधीर और अस्थिर भटक कर मरते हैं।

अवतरण-100

साधना का दीप जलाऊँ मैं। उसमें हृदय का तेल और शरीर की बाती भरूँ, फिर आत्मज्योति की लौ से प्रदीप करूँ उसे। प्रदीप्तावस्था में वह दीप समाज-गृह में सबसे उपयोगी वस्तु है पर यदि क्षणिक विश्रांति के लिए वह जलना बन्द कर दे तो गृह का श्वान भी उससे कहीं अधिक उपयोगी बन जायेगा, कारण कि वह अन्धकार की चादर को ओढकर आने वाले चोरों से घर की रक्षा कर सकेगा।

दीपक का महत्त्व प्रकाश, शरीर का जानो श्रम।
आत्मा का महत्त्व ज्ञान, यही सच्चा क्रम।।

पुस्तिका के 100वें अवतरण पर हम पहुँचे हैं। शतक का, सदी का महत्त्व हम अच्छी तरह से जानते हैं, जिसे समझाने की आवश्यकता नहीं। व्यक्ति की, प्रवृति की शताब्दियाँ मनाई जाती हैं। क्रिकेट में शतक का कितना महत्त्व है, शतक बनाने वाला शतकवीर बन जाता है। हम

भी 100वें अवतरण को शताब्दी मानकर इस अवतरण पर ज्यादा विस्तार से चर्चा कर इसे मनाते हैं।

साधक प्रारम्भ करता है-'साधना का दीप जलाऊँ मैं'। पाँच शब्दों का छोटा-सा वाक्य कितना महत्त्व का और प्रकाश फैलाने वाला है। इसे समझने के लिए साधक की साधना को समझना होगा जिसके लिए गहराई, गंभीरता, धीरज से सोचना पड़ेगा। है तैयारी?

'मेरी साधना' पुस्तक क्षत्रिय, क्षात्रधर्म, क्षात्रत्व और श्री क्षत्रिय युवक संघ को समझने के लिये महामूल साधन है। साधना का दीपक अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ। हम अपनी मर्यादा सीमा में रहकर बात करेंगे। 'वह दीप समाज-गृह में सबसे उपयोगी वस्तु है' इस वाक्य के आधार पर साधना का दीप अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ सटीक बैठता मालूम पड़ता है।

इस दीप प्राकट्य के लिए शरीर, हृदय और आत्मा अपनी ऐसी महा मूल्यवान सामग्री के उपयोग करने की बात करते हैं। इसे समझने से पहले इस दीप की स्थापना, स्थापक और उसका हेतु समझें।

भारतमाता की अंग्रेज शासन से मुक्ति 15 अगस्त सन् 1947 के दिन हुई। जबकि श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना सन् 1946 में ही 22 दिसम्बर के दिन हुई। आजादी के 238 दिन पहले 22 वर्ष के एक युवक ने आजादी के बाद राष्ट्र की, समाज की, क्षत्रिय समाज की कैसी स्थिति किस प्रकार की परिस्थितियों में गुजर कर होगी, वह चित्र अपने मानस पर अंकित कर लिया होगा। इसीलिए उन परिस्थितियों से सामना करने के लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की गई अर्थात् पानी आने से पहले ही बाँध बांधना प्रारम्भ किया था इस युगद्रष्टा नवयुवक यानी स्व. पू. तनसिंहजी ने। स्थापना का हेतु समझाने की आवश्यकता नहीं लगती। श्री क्षत्रिय युवक संघ तब से ही समाज को जगाने का, उसमें चेतना भरने का, समाजोत्थान का कार्य कर रहा है। यह बात मैं, आप सब अच्छी तरह जानते हैं। अगर कोई न जानता हो तो यह व्यक्ति और समाज का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा।

इस दीपक को प्रकट कर प्रकाशित रखने के लिए किसने अपने हृदय, शरीर और आत्मप्रकाश द्वारा भागीरथ पुरुषार्थ किया? इसमें दो नामों का उल्लेख करना आवश्यक और उचित लगता है। एक प्रवृति के जनक पू. तनसिंहजी और दूसरे 'मेरी साधना' पुस्तक के लेखक स्व. श्रद्धेय आयुवानसिंहजी। उनके कार्य का, त्याग का, बलिदान का इतिहास शब्दों द्वारा कहना मुश्किल लगता है। यह जानने के लिए तो अवतरण सं. 76 के अनुसार ताप, ताड़न, छेदन और घर्षण सहना पड़ेगा। यानी शिविरों में जाकर अनुभव करने से ही महापुरुषों की महानता कुछ समझ सकेंगे। यह बात आराम प्रिय सज्जनों की समझ में नहीं उतरेगी। यहाँ अवतरण-77 में कही गई बात की याद दिला दूँ तो कुछ गलत नहीं है-'इस पथ की रज में अपना अस्तित्व मिटाकर मिल जाना होगा, जीवन को मृत्यु का स्वाद चखने के लिए तैयार करना पड़ेगा। तब कहीं जाकर साधना के रूप में साधकों की यह तपस्या पूर्ण होगी। पूछ लीजिए अपनी आत्मा से! यदि अन्त तक साथ देना स्वीकार है तो ठीक, नहीं तो अभी से नमस्ते'।

किसी भी प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, समाजोद्धारक, राष्ट्रोद्धारक प्रवृति में नियमितता और निरंतरता उसका प्राण है। इस बात को समझाने के लिये साधक इस अवतरण में कहते हैं-'प्रदीप्तावस्था में वह दीपक समाज-गृह में सबसे उपयोगी वस्तु है पर यदि क्षणिक विश्रांति के लिए वह जलना बन्द कर दे तो गृह का श्वान भी उससे कहीं अधिक उपयोगी बन जाएगा।'

समाज में बहुत प्रवृत्तियाँ चलती हैं। प्रवृति करने वालों का दावा होता है कि इस प्रवृति द्वारा हम समाज हित की, जागृति की, विकास की प्रवृति करते हैं। दावा गलत नहीं है। किन्तु उपरोक्त (ताप, ताड़न, छेदन, घर्षण) कसौटी में कसकर ही सच्चा ख्याल आता है कि प्रवृति कितनी उपयोगी है। किसी संस्था की स्थापना करना, किसी प्रवृति का शुरू करना कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु वह संस्था या प्रवृति नियमित और निरन्तर चलती रहे, समाज में प्राण फूंकती रहे, समाज को गलत रास्ते पर जाने से रोकते हुए

सच्चा मार्गदर्शन करके समाज को कर्तव्य के पथ पर चलाकर, समाज का अस्तित्व दृढ कर गौरव प्राप्त करवा दे यह आवश्यक होता है। कई संस्थाएँ अपने स्थापक की उपस्थिति में समाज का मार्गदर्शन करके समाज में आवश्यक परिवर्तन और सुधार करके समाज को चेतनाभिमुख बनाने का सद्कृत्य करती रहती हैं। वही संस्था स्थापक के बाद निस्तेज बनकर हाड पिंजर सम खड़ी रहती है। उपयोगिता खोकर स्थूल अस्तित्व धारण करती है। ऐसा क्यों? छोटा-सा उत्तर है-संस्था के कार्यकर्ताओं में समाज पीड़ा का अभाव। स्थापक की पीड़ा, वेदना के अनुयायी कार्यकर्ताओं का अभाव। प्रवृति को, संस्था को जीवित, चेतन रखने के लिए संवेदनशील कार्यकर्ताओं का निर्माण आवश्यक और उपयोगी है। सामान्यतया सामाजिक संस्थाएँ कार्यकर्ता निर्माण के सम्बन्ध में सक्रिय देखने को नहीं मिलती। इसीलिए तो किसी प्रभावी व्यक्ति द्वारा प्रारम्भ की गई संस्था उसके बाद निष्प्राण, गतिहीन और निरुपयोगी बनती हुई देखनी को मिलती है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी ने संस्थाओं की इस कमी को देखकर, सोच-समझकर क्षत्रिय युवक संघ में नेतृत्व की, मार्गदर्शक की कमी न पड़े इसलिए संस्कारमयी सामुहिक कर्मप्रणाली की व्यवस्था द्वारा कार्यकर्ता निर्माण की सुन्दर व्यवस्था दी। प्रणाली के सतत, नियमित, निरंतर चलते रहने से संघ को योग्य नेतृत्व और कार्यकर्ता मिलते रहते हैं। इसीलिए तो संघ 75 वर्षों से सक्रिय रहकर उत्तरोत्तर विकास के सोपान चढता हुआ देखने को मिल रहा है।

सामाजिक संस्थाओं के संचालकों, कार्यकर्ताओं की प्रवृति प्रभावशाली बनाने के लिये आवश्यक अंग है कार्यकर्ता-निर्माण, इसी की ओर ध्यान खींचने के लिए यह छोटा-सा नम्र प्रयत्न है। जिस पद्यति से, जिस गति से हमारी सामाजिक संस्थाएँ काम करती हैं, उससे समाज की भलाई दिखती नहीं। कोई बुरा न माने, गलत अर्थ न लगा ले, आत्म निरीक्षण करें, आत्म विश्लेषण करें अपने आप से प्रश्न पूछें कि हम जिस तरह काम कर रहे हैं क्या उससे समाज का नव निर्माण सम्भव है? हमारे सामने क्षत्रिय युवक संघ एक आदर्श नमूना है। या तो हम उसे समझ नहीं सकते इसलिए नहीं अपनाते या हमारी कोमलता, आरामप्रियता हमें उससे दूर रखती है। एक शेर हमारी इस हालत का वर्णन करता है।

शेर-बाग में लगता नहीं, सहरासे घबराते हैं जो, ऐसे दीवानों को कहाँ ले जाकर बैठें हम। आत्म खोज, आत्म निरीक्षण, अंतरमन के साथ बात करने का अपना अभ्यास नहीं है, आदत नहीं है। इसीलिए तो हमारा विचार, कार्य, वृत्ति, प्रवृत्ति सभी ऊपरी ही होते हैं, कहीं गहराई, गंभीरता या सूक्ष्म दृष्टि का अनुभव दिखाई नहीं देता।

आत्मनिरीक्षण, अंतरमन की चर्चा छोड़कर इस अवतरण की मूल बात-'साधना का दीप जलाऊँ मैं' के सम्बन्ध में आवश्यक व छोटी बात करूँ। यह दीपक जलाने के लिये पात्र, वाट, घी या तेल और दिया सलाई की आवश्यकता नहीं है। यह सब भौतिक दीपक के लिये ही आवश्यक है। साधक जो दीपक जलाकर प्रकाश प्रसारित करना चाहता है, उसके लिए ह्दय के तेल, तन की वाट और आत्मप्रकाश की ज्योत आवश्यक है। संक्षेप में कहें तो व्यक्ति तन, मन, धन से समाज को, प्रवृति को समर्पित हो, वही व्यक्ति समाज का नव निर्माण, समाज की काया पलट करके समाज में जागृति, चेतना, विकास लाकर सामाजिक गौरव व स्वाभिमान जगा सके। पू. तनसिंहजी एक गीत पंक्ति के द्वारा कैसा दीपक चाहते हैं, वह देखें-

चाहे एक ही जले पूरे स्नेह से जले ऐसे दीप चाहिए।
जिनकी कांपे नहीं लौ, कहीं दुनिया में हो, ऐसी ज्योत चाहिए।।

इस सहगीत पंक्ति के बाद थोड़ी सामाजिक चर्चा करने का लाभ मैं रोक नहीं सक रहा हूँ। जीवन में व्यवहार में, नौकरी, व्यवसाय के लिए प्रत्येक क्षेत्र में कुछ योग्यता का मापदण्ड होता है। मात्र तीन क्षेत्र-समाज, साधु और राजनीति ऐसे हैं जहाँ किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता नहीं। जो मन चाहे वह भगवा पहनकर साधु बन जाए। मन चाहे वह राजकीय नेता बन जाए,

सामाजिक कार्यकर्ता बन जाए। शास्त्रों ने तो इन सभी क्षेत्रों में योग्यता का मापदण्ड तय किया हुआ ही है किन्तु आज शास्त्र किसे कहा जाए यह मालूम नहीं तो उसके बताए मापदण्ड की तो क्या बात करें?

स्थिरता, दृढता, धीरता और वीरता किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले के लिए आवश्यक गुण हैं। इसीलिए क्षत्रिय समाज के कार्यकर्ता में ये गुण तो होने ही चाहिए। गीता में वर्णित क्षत्रिय के सात आवश्यक गुणों के अतिरिक्त प्रेम, परोपकार, संवेदनशीलता, सहृदयता, निस्वार्थभाव, पीड़ा, वेदना, सरलता और सत्य महत्त्वपूर्ण और आवश्यक गुणों की गिनती में हैं। अपने यहाँ तो स्वप्न आया और सुबह संस्था-'क्षत्रिय कल्याण समिति' खड़ी करके प्रमुख और पदाधिकारियों के नाम तय कर सूचना प्रसारित कर दी। बन गए नेता और कार्यकर्ता। ऐसे शहर की गलियों में और गाँवों में किसी न किसी नाम से संस्था बनी मिलती है। आप कोई सामाजिक प्रवृति के बारे में जानकारी देने जाओ तो आपकी बात जानने से पूर्व ही वे अपनी संस्था का महत्त्व, उसके माध्यम से समाज को होने वाले काल्पनिक लाभ के बारे में लम्बा सा बयान दे देंगे। आप हैरान रह जाओगे। समाज के लिये अच्छी भावना रखने वाले पाठक मित्रों को समाज की वास्तविकता का दर्शन हो इस आशा से कई लोगों को न भी जचे, ऐसे समाज के स्वरूप के अनुभव को प्रकट करने की हिम्मत की है।

फिर मूल बात पर आ जाता हूँ। इस अवतरण में प्रारम्भ में कही बात कि साधना के दीपक को जलाऊँगा, आगे के दो-तीन अवतरण में भी दीपक की बात चालू रहेगी। जो वहाँ देखेंगे।

दिया जले जलकर है जलाता परवाने को क्यों बतला?
जब तक न जलूं नहीं चैन मुझे, मैं दीवाना हूँ क्यों बतला?

उपरोक्त पंक्ति के बारे में क्या लिखूँ? कैसे समझाऊँ, कोई उपाय न मिला। पाठकों को जो समझना हो वो समझें ऐसा मानकर दूसरी पंक्ति लिखकर उसके बारे में थोड़ा समझकर इस अवतरण को पूरा करते हैं-

घर में दीप जला जलकर जगत को दीप्त कर देता।
परवाना शमा पर चढ के निज को खाक कर देता।
वह जलता वह मरता, मुझे कुछ तो सिखा देना।
मेरे सोते हुए जीवन में रणभेरी बजा देना।।

- पू. तनसिंहजी

सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत सभी संस्थाओं के नेता, पदाधिकारी 'मेरी साधना' के महामूल्यवान अवतरणों, 'झनकार' के महामूल्यवान गीतों की पंक्तियों को आत्मसात कर समाज को सच्चे अर्थ में जगाने, चेतना भरने, रणभेरी बजाने का संकल्प करें, यही अभ्यर्थना है।

अर्क- संघ दीप से जलकर हम सब दीपलड़ी बन जावें।
भाव कर्म को एक बनाकर व्यक्तिवाद बिसरावें।

(क्रमशः)

मेरे समाज की काल रात्रि में सूर्य उगा है,
द्वेष दम्भ का भूत भयंकर तभी भगा है।
झूठे जग में इक संघ बन्धु बिन कौन सगा है,
तन, मन, धन, जीवन एक ही रंग रंगा है।
फर फर फर फहराता कहता जियो शान से, मरो शान से।।

- पू. तनसिंहजी

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) पर विस्तार करने से पूर्व हम इस कड़ी में उनके चौहान वंश का संक्षिप्त अवलोकन करेंगे।

व्युत्पत्ति व मूलपुरुष :

वंश आधारित राज्य भारत में चिर काल से रहे हैं। ये केन्द्रीय साम्राज्य बनने पर उसके अधीन या पृष्ठभूमि में चले जाते हैं और उसका लोप होने पर पुन: प्रखर हो उठते हैं। ऐसा ही एक राजपूत वंश चौहानों का है जिसने समय के फेंके हर भाले को झेल लिया- हूण, तुर्क, मुगल, अफगान व मराठा। चौहान शब्द चाहमान का अपभ्रंश है। चाहमान इस वंश के मूलपुरुष थे। चाहमान को कुछ विद्वान मालववंशी या मालवों के अधीन कोई सामंत बताते हैं। इसका पर्याप्त आधार भी है।

चाहमान के समय का अनुमान तो हमें हांसोट के ताम्रपत्र से हो जाता है[1]। इसके अनुसार चौहानों की एक शाखा 8वीं सदी के मध्य में भरूच में शासन करती पाई जाती है। ताम्रपत्र में इस शाखा की पीढ़ियों का जो उल्लेख है, उससे ये महेश्वरदाम नामक एक सामन्त से लगभग 600 ईस्वी में शुरू होती है। अतएव मूलपुरुष चाहमान की गणना आपको कुछ पीढ़ियाँ और पीछे ले जाएगी। जहाँ मालवों ने हूणों को 528 ईस्वी के निर्णायक संघर्ष में परास्त किया।[2]

चौहानों का केन्द्र स्थल साम्भर, हूणों के राज्य और औलिकार मालवों के मंदसौर क्षेत्र के बीच था। तो स्वाभाविक है कि साम्भर दोनों पक्षों के टकराव में अपरिहार्य रूप से युद्धस्थली बन जाता था। ऐसे में चाहमान का युद्ध में भाग ना लेना असम्भव हो जाता है।

चौहान वंश से उनके मूलपुरुष चाहमान ही इस संघर्ष में भागीदार थे इसका समर्थन पृथ्वीराज विजय की पंक्तियों से हो जाता है[3], जहाँ चाहमान, उनके भाई धनञ्जय और पिता विरोचन साम्भर-पुष्कर क्षेत्र (केन्द्रीय राजस्थान) में म्लेच्छों से संघर्ष करते दिखते हैं। पृथ्वीराज विजय के इस संघर्ष में भी चाहमान की निर्णायक विजय हुई, जैसे 528 ई. के युद्ध में मालवों की हूणों पर बताई जाती है।

चौहानों के वृहतर उद्भव पर धारणाओं का अम्बार है। विन्सेंट स्मिथ आदि यूरोपीय विद्वान अपनी आदत अनुसार चौहानों को विदेशी मूल का बता गए। उस समय के सीमित तथ्य व शोध प्रगति के अभाव में जेम्स टॉड भी ऐसा ही करते दिखे। फिर श्री डी.आर. भंडारकर ने एक कदम आगे जाकर राजपूतों, ब्राह्मणों व विदेशियों की खिचड़ी बना दी। ये अटपटे दावे मुख्यत: राजपूतों व विदेशी कबीलों के रीति परम्पराओं में कुछ तथाकथित समानताओं पर आधारित थे। हम इन दावों पर और समय नहीं लेंगे क्योंकि इनका खण्डन विद्वान वर्ग पहले ही भरपूर कर चुका है। पाठकगण इस विषय में श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, दशरथ शर्मा, श्री गोपीनाथ शर्मा और श्री चिंतामणि विनायक वैद्य के ग्रन्थ विस्तार से पढ़ सकते हैं।

वंशावली पर सर्वाधिक प्रचलित अग्निकुल का मिथक है जहाँ चाहमान को आबू पर्वत[4] पर यज्ञकुण्ड से उत्पन्न चार वंशपुरुषों में से एक बताया गया है। चाहमान की चार विशाल भुजाओं के कारण उनका ये नाम पड़ा बताया गया है।

10वीं से 16वीं सदी ई. (चौहान इतिहास की मुख्य सदियाँ) में चौहानों के लिए अग्निकुण्ड वंशोत्पति की पुष्टि का कोई साक्ष्य नहीं मिलता। पृथ्वीराज रासो के लघुतम संस्करण में भी ऐसा नहीं लिखा।

मध्यकाल के उत्तरार्ध में जब उत्तर पश्चिम भारत में ही राजपूत कुलों की संख्या दर्जनों में पहुँच गयी, तो अपने आश्रयदाता, राजपूत कुलों के महिमामंडन के लिए अनेकों भाटों ने इस अग्निकुंड कथा का उपयोग किया। भाटों ने रचना शक्ति का ये प्रदर्शन अरब व तुर्क आक्रमणों से लोहा लेते राजपूत प्रतिरोध की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर किया।

इस संघर्ष के अग्रणी वंश समय-समय पर बदलते रहे और तदनुसार बदलती रही गौरव गाथा। हम्मीररासो, वंशभास्कर, मुहणोत नैणसी री ख्यात व पृथ्वीराज रासो के बड़े संस्करणों में चौहानों को अग्निवंशी बताया गया है।

पर अग्निकुण्ड नहीं तो चौहानों के उद्गम का सत्य क्या है?

ऐतिहासिक अनुसंधान का सर्वतंत्रसिद्धान्त है- शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के इतिहास के शरीर की हड्डियों के समान हैं; काव्य आख्यानादि ग्रन्थ उसके माँस, मज्जा व जनश्रुतियाँ और समाज की पीढ़ी दर पीढ़ी चलती सामूहिक स्मृति परम्परा उसके रक्त की भाँति हैं। 10वीं से 15वीं सदी ई. तक के अनेकों शिलालेख चौहान वंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हैं। अधिकांश ने चौहानों को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा है।[5] सोमेश्वर चौहान के काल का प्रसिद्ध बिजौलिया शिलालेख, विग्रहराज चौहान (चतुर्थ) का अजमेर[6] सरस्वती मंदिर शिलालेख और पृथ्वीराज का बड़ला शिलालेख भी चौहानों को सूर्यवंशी बताते हैं।

पृथ्वीराज को चंद्रवंशी बताने वाली विवेचना जिन शिलालेखों पर आधारित है-पृथ्वीराज चौहान द्वितीय का हांसी (हांसिका) शिलोलख[7], 1320 ई. से लुंटिगदेव चौहान का अचलेश्वर मंदिर (आबू) स्थित शिलालेख।[8]

चौहानों के गोत्र का वर्णन जहाँ भी है वहाँ वत्स ही लिखा मिलता है।

ग्रंथों में समकालीन पृथ्वीराजविजय **(सर्ग 2 श्लोक 1)**, निकटकालीन हम्मीर महाकाव्य **(सर्ग 1 श्लोक 13-16)**, सुर्जन चरित आदि ग्रन्थ चौहानों को सूर्यवंशी बताते हैं।

श्री दशरथ शर्मा ने चौहानों का ब्राह्मणों से उत्पन्न होना बताया है।[9] इसका आधार बिजौलिया शिलालेख[10] में सामंतदेव चौहान पर एक विवादित पंक्ति, जान कवि का कायमखां रासो नामक काव्य (18वीं सदी के आरम्भ में लिखा) व सूंधा शिलालेख है।

चौहान की मूलस्थली :

चौहानों के उद्‌गम स्थान पर जितने भी ग्रन्थों ने बात की है, वो वंश के मूलपुरुष की उपस्थिति हर्षनाथ (चौहानों का कुलदेव स्थल) से लेकर शाकम्भरी[11] (कुलदेवी स्थल) तक के लगभग 60 कि.मी. क्षेत्र में दिखाते हैं।

न केवल पृथ्वीराजविजय, हम्मीरमहाकाव्य, सुर्जन चरित आदि ग्रन्थ, अपितु अनेकों शिलालेखों में भी चाहमान व उनके बाद आए वत्सराज चौहान का उद्‌गम क्षेत्र यही बताया गया है।[12]

इस भौगोलिक क्षेत्र को प्राय: सपादलक्ष भी कहा जाता है। सपादलक्ष, तकनीकी अर्थ से तो राज्यों की एक श्रेणी कही जा सकती है जिसमें सवा लाख गाँव होते हैं। व्यावहारिक रूप से नागौर से साम्भर के बीच का यह क्षेत्र 12वीं सदी ईस्वी से लेकर 17वीं सदी के उत्तरार्ध में आई नैणसी की ख्यात तक सपादलक्ष या रूपांतरित सवा लाख कहा गया है।

चौहानों के स्वतंत्र राज्य की प्रथम स्थापना अहिछत्रपुर (अनुमानत: नागौर) नामक स्थान में है जो कि अभी बताये गए उनके उद्‌गम स्थल से निकट है। उस क्षेत्र से चौहान शक्ति का विस्तार आगे की सदियों में अजमेर, नाडोल, जालोर, भरूच, उत्तरी राजस्थान होते हुए हरियाणा, उत्तरप्रदेश, दिल्ली और उसके आगे तक हुआ। मध्ययुग में विभिन्न चौहान परिवारों ने अनेकों राज्य स्थापित किये पर सबसे शक्तिशाली राज्य था साम्भर (मूलत: शाकम्भरी) राज्य जिसका नेतृत्व पृथ्वीराज चौहान ने किया था।

उद्‌धरण :

1. एपिग्राफिया इंडिका, खंड 12, पृ. 197-204
2. दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान एवं उनका युग, पृ.सं. 42-44; मालव वंश विक्रम संवत की स्थापना व हूण, शक आदि आक्रान्ताओं को हारने के कारण विख्यात है।
3. पृथ्वीराजविजय महाकाव्यम्, सर्ग 2, श्लोक 62-67 की व्याख्या पर आधारित।
4. आबू का मूल नाम अर्बुद था।
5. पृथ्वीराजविजय महाकाव्यम्, सर्ग 2, श्लोक 40-44; हम्मीर महाकाव्यम्, सर्ग 1, श्लोक 13-17; हर्षनाथ शिलालेख 961 ई., सेवाड़ी ताम्रपत्र 1176 ई, एपिग्राफिया इंडिका, खंड 11, पृ. 304-08 व अन्य कुछ शिलालेख।
6. मूल नाम अजेयमेरु पूर्ववर्ती चौहान शासक अजयराज चौहान से प्रेरित है।
7. इंडियन एंटीक्वेरी खंड 41, पृ. 17-19
8. एपिग्राफिया इंडिका, खंड 9, पृ. 77
9. अर्ली चौहान डायनस्टीज, दशरथ शर्मा, पृ. सं. 7-8
10. फरवरी 1170 ई., देखें ऐ.इ. भाग 26, पृ. 102-120
11. शाकम्भरी व साम्भर समानार्थी है।
12. हर्षनाथ शिलालेख 973ई.; बिजौलिया शिलोलख 1170 ई.

(क्रमश:)

महाराणा सांगा और बाबर को उनका निमंत्रण?

– संकलित

महाराणा साँगा मेवाड़ राज्य के शासक थे जिसमें आज के उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़, भीलवाड़ा, डूंगरपुर जिले और झालावाड़ की पिड़ावा तहसील आदि क्षेत्र सम्मिलित थे। महाराणा सांगा के भारतीय इतिहास में योगदान की जब बात की जाती है तो उनके लिए जो कथानक इस देश के इतिहासकारों द्वारा गढ़ा गया है उसमें उनकी प्रमुख उपलब्धियों के महत्त्व एवं उनकी प्रासंगिकता को पूरी तरह से नकार कर बहुत ही चयनात्मक और न्यूनतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। वस्तुत: इतिहास लेखन में किन घटनाओं का चयन कर उन्हें प्रमुखता देनी है और उन घटनाओं को किस विशिष्ट क्रम में प्रस्तुत करना है, किसी इतिहासकार द्वारा किया गया यह चयन अपने आप में एक नयी ऐतिहासिकता को जन्म देने की क्षमता रखता है। इस लेख में राणा सांगा के संदर्भ में इतिहासकारों की इसी चयनात्मक प्रवृति और उससे उपजे दुष्प्रचार का विवेचन किया जायेगा।

वर्तमान इतिहासकारों द्वारा भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय परिदृश्य में महाराणा साँगा को केवल दो ही बातों के लिए जगह दी जाती है : **प्रथम** बाबर के विरुद्ध खानवा की लड़ाई में उनकी पराजय जो कि एक तथ्य है, और **दूसरी** एक ऐसा दुष्प्रचार जिसमें उन्हें बाबर को भारत में आमंत्रित करने वाला बताकर उन्हें एक तरह से भारत भूमि के गद्दार के रूप में स्थापित करने की कुचेष्टा की जाती है।

कुछ समय पहले एक न्यूज चैनल पर हुई डिबेट में असदुद्दीन ओवैसी ने पूछा था कि बाबर को भारत में बुलाने वाला कौन था? चूंकि उस बहस में इसका वास्तविक उत्तर उन्हें किसी ने भी नहीं दिया था, अत: इस लेख का उद्देश्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इसी प्रश्न का उत्तर देना है कि बाबर को भारत में किसने बुलाया था।

भारत पर आक्रमण करने के लिए बाबर को किसी निमंत्रण की आवश्यकता नहीं थी, समरकंद को उज्बेकों से वापस छीनने के अपने प्रयास (1511-1512) में बाबर इतनी बुरी तरह हारा था कि उसकी किस्मत ही कही जाएगी कि वह फरग ना घाटी से किसी तरह जीवित बच निकला। बाबर के लिये पीछे जाने के सभी रास्ते बंद थे। उसके लिए अगर कहीं अवसर था तो वह था कमजोर पड़ता लोदी साम्राज्य।

कंधार में अपना राज जमाने के बाद बाबर के लिए अब भारत की ओर ध्यान देना आसान हो गया था और

a. Affairs of Hindūstān.

The centre of interest in Bābur's affairs now moves from Qandahār to a Hindūstān torn by faction, of which faction one result was an appeal made at this time to Bābur by Daulat Khān *Lūdī* (*Yūsuf-khail*) and 'Alāu'd-dīn 'Alam Khān *Lūdī* for help against Ibrāhīm.[2]

The following details are taken mostly from Aḥmad Yādgār's *Tārīkh-i-salāṭīn-i-afāghana*[3]:—Daulat Khān had been summoned to Ibrāhīm's presence; he had been afraid to go and had sent his son Dilāwar in his place; his disobedience angering Ibrāhīm, Dilāwar had a bad reception and was shewn a ghastly exhibit of disobedient commanders. Fearing a like fate for himself, he made escape and hastened to report matters to his father in Lāhor. His information strengthening Daulat Khān's previous apprehensions, decided the latter to proffer allegiance to Bābur and to ask his help against Ibrāhīm. Apparently 'Ālam Khān's interests were a part of this request. Accordingly Dilāwar (or Apāq) Khān went to Kābul, charged with his father's message, and with intent to make known to Bābur Ibrāhīm's

वह भारत के लिए किसी अच्छे अवसर की तलाश में था और **यह अवसर या निमंत्रण उसे दिया 'दौलत खान लोदी' और 'आलम खान लोदी' ने जिन्होंने इब्राहीम खान लोदी के विरुद्ध भारत में बाबर को आमंत्रित किया।** यह बातें स्वयं बाबर की जीवनी 'बाबरनामा' में लिखी गयी हैं और उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों और अन्य ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर प्रमाणित भी होती है। इन्हीं सब बातों की विस्तार से चर्चा हम इस लेख में करेंगे।

बाबर के भारत पर आक्रमण के समय लोदी

A hundred and twenty-five years after Timur's invasion, his sixth descendant in the direct male line, Zahiruddin Babur began the Turki conquest of India. Babur had led an adventurous life with much fighting and many reverses ever since the age of twelve, but shown wonderful tenacity in recovering his own. At last losing his paternal dominion, the small State of Fargana, he had established himself in Kabul (1505), and from this base he began a series of raids into the Panjab which was then governed by Daulat Khan on behalf of the Lodi Sultan of Delhi. Daulat was faithless to his master and courted Babur in the hope of making himself independent, but in the end his ally crushed him and seized the Panjab for himself (1525).

सल्तनत में पंजाब का सूबेदार दिल्ली सुल्तान इब्राहीम खान लोदी का रिश्तेदार दौलत खान लोदी था। इतिहासकार जदुनाथ सरकार के अनुसार दौलत खान लोदी दिल्ली से स्वतंत्र होना चाहता था। उसे इब्राहीम लोदी से हमेशा शंका बनी रहती थी क्योंकि इब्राहीम लोदी ने अपने पिता सिकन्दर लोदी के दरबार में रहे कई अमीरों को मौत के घाट उतार नए अमीरों को अपने दरबार में जगह दी थी। ऐसी परिस्थितियों में पंजाब में दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र अपनी अलग सत्ता स्थापित करने के लिए ही दौलत खान लोदी ने बाबर से इब्राहीम लोदी के विरुद्ध मदद माँगी। लेकिन, वामपंथी इतिहासकारों ने बाबरनामा में आये एक चार पंक्ति के अप्रमाणिक संदर्भ के आधार पर महाराणा साँगा द्वारा बाबर को आमंत्रित करने का एक ऐसा घृणित निष्कर्ष निकाला जिसका फायदा ओवैसी जैसे लोग अपने राजनैतिक हितों के लिए उठा हमारे इतिहास को दूषित करने की कुचेष्टा करते हैं।

आइये देखें बाबर ने अपने संस्मरण में महारणा साँगा का उल्लेख किस प्रकार किया है। बाबर लिखता है कि हिन्दुस्तान के शासकों में प्रमुख पांच मुसलमान सुल्तान हैं और दो काफिर राजा। इन काफिर राजाओं में एक है विजयनगर का राजा और दूसरा है महाराणा साँगा, जो अपनी तलवार और वीरता के बल पर महान बना है, जिसने गुजरात और मांडू के सुल्तानों को हराया और कई मुसलमान राजवंशों को धूल में मिला दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वयं बाबर द्वारा महाराणा साँगा को उत्तरी भारत में सबसे ताकतवर राजा के रूप में उद्धृत किया गया है।

आइए अब दौलत खान लोदी के दूत के बारे में बाबर द्वारा अपनी आत्मकथा में किये गये वर्णन की तुलना महाराणा साँगा के प्रस्ताव के बारे में उसके द्वारा दी गई जानकारी से करते हैं। बाबर और अहमद याल्गर (मुगल

(*b. Rulers contemporary with Bābur's conquest.*)

At the date of my conquest of Hindūstān it was governed by five Musalmān rulers (*pādshāh*)[1] and two Pagans (*kāfir*). These were the respected and independent rulers, but there were also, in the hills and jungles, many rāīs and rājas, held in little esteem (*kīchīk karīm*).

Fourthly, there was Sl. Mahmūd in the country of Malwā, which people call also Mandāū.[2] His dynasty they call Khilīj (*Turk*). Rānā Sangā had defeated Sl. Maḥmūd and taken possession of most of his country. This dynasty also has become feeble. Sl. Maḥmūd's ancestors also must have been cherished by Sl. Fīrūz Shāh; they became possessed of the Malwā country after his death.[3]

These five, mentioned above, were the great Musalmān rulers, honoured in Hindūstān, many-legioned, and broad-landed. Of the Pagans the greater both in territory and army, is the Rāja of Bījānagar.[1]

The second is Rānā Sangā who in these latter days had grown great by his own valour and sword. His original country was Chitūr; in the downfall from power of the Mandāū sulṭāns, he became possessed of many of their dependencies such as Rantanbūr, Sārangpūr, Bhīlsān and Chandīrī. Chandīrī I stormed in 934 AH. (1528 A.D.)[2] and, by God's pleasure, took it in a few hours; in it was Rānā Sangā's great and trusted man Midnī

दरबारी इतिहासकार), दोनों ने ही अपनी-अपनी किताबों में दौलत खान द्वारा भेजे गए दूत के बारे में तीन पृष्ठों का लम्बा चौड़ा वर्णन किया है, जिसमें दौलत खान द्वारा बाबर को उपहार के रूप में भेजे गए आधे-पके आम जैसे छोटे-मोटे विवरण तक लिखे गए हैं। आश्चर्य की बात है कि दौलत खान जैसे एक सूबेदार के दूत का जहाँ इतना विस्तृत विवरण बाबर के संस्मरण में हमें मिलता है, वहीं उसके विपरीत, बाबर के स्वयं के मूल्यांकन में उत्तरी भारत के सबसे प्रतापी शासक महाराणा साँगा का प्रस्ताव आये और उसके लिए मात्र चार पंक्तियों में विवरण दिया जाये। इस तरह की ऐतिहासिक विसंगतियों एवं तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों को पूरी तरह दरकिनार कर बिना किसी अन्य तत्कालीन संदर्भों एवं साक्ष्यों के ही बाबर की आत्मकथा में लिखी इन चार पंक्तियों से ही वामपंथी इतिहासकारों ने यह हास्यास्पद निष्कर्ष निकाल दिया कि महाराणा साँगा ने बाबर को इब्राहीम लोदी को हटाने और आगरा पर अपना शासन स्थापित करने के लिए, भारत पर

आक्रमण का आमंत्रण भेजा था। ध्यान देने योग्य बात है कि उस समय के किसी अन्य मुसलमान या राजपूत इतिहासकार ने महाराणा साँगा के ऐसे किसी भी दूत का वर्णन नहीं किया है और ना ही अहमद याल्गर ने इसका कोई जिक्र किया है।

BABUR & AHMAD YALGAR (CONTEMPORARY HISTORIAN) TALKING ABOUT DILAWAR KHAN (ENVOY SENT BY DAULAT KHAN LODHI)

his son Dilāwar in his place; his disobedience angering Ibrāhīm, Dilāwar had a bad reception and was shewn a ghastly exhibit of disobedient commanders. Fearing a like fate for himself, he made escape and hastened to report matters to his father in Lāhor. His information strengthening Daulat Khān's previous apprehensions, decided the latter to proffer allegiance to Bābur and to ask his help against Ibrāhīm. Apparently 'Ālam Khān's interests were a part of this request. Accordingly Dilāwar (or Apāq) Khān went to Kābul, charged with his father's message, and with intent to make known to Bābur Ibrāhīm's

b. Reception of Dilāwar Khān in Kābul.

Wedding festivities were in progress[1] when Dilāwar Khān reached Kābul. He presented himself, at the Chār-bāgh may be inferred, and had word taken to Bābur that an Afghan was at his Gate with a petition. When admitted, he demeaned himself as a suppliant and proceeded to set forth the distress of Hindūstān. Bābur asked why he, whose family had so long eaten the salt of the Lūdīs, had so suddenly deserted them for himself. Dilāwar answered that his family through 40 years had upheld the Lūdī throne, but that Ibrāhīm maltreated Sikandar's amīrs, had killed 25 of them without cause, some by hanging, some burned alive, and that there was no hope of safety in him. Therefore, he said, he had been sent by many amīrs to Bābur whom they were ready to obey and for whose coming they were on the anxious watch.

c. Bābur asks a sign.

At the dawn of the day following the feast, Bābur prayed in the garden for a sign of victory in Hindūstān, asking that it should be a gift to himself of mango or betel, fruits of that land. It so happened that Daulat Khān had sent him, as a present, half-ripened mangoes preserved in honey; when these were set before him, he accepted them as the sign, and from that time forth, says the chronicler, made preparation for a move on Hindūstān.

AHMAD YALGAR MAKES NO REFERENCE OF ENVOY FROM SANGHA

BABUR TALKING ABOUT RANA SANGA:

While we were still in Kābul, Rānā Sangā had sent an envoy to testify to his good wishes and to propose this plan: "If the honoured Pādshāh will come to near Dihlī from that side, I from this will move on Āgra." But I beat Ibrāhīm, I took Dihlī and Āgra, and up to now that Pagan has given no sign soever of moving. After a while he went and laid siege to Kandār[3] a fort in which was Makan's son, Ḥasan by name. This Ḥasan-of-Makan had sent a person to me several times, but had not shewn himself. We had not been able to detach reinforcement for him because, as the forts round-about—Atāwa (Etāwa), Dūlpūr, and Biāna—had not yet surrendered, and the Eastern Afghāns were seated with their army in obstinate rebellion two or three marches on the Āgra side of Qanūj, my mind was not quite free from the whirl and strain of things

[1] A seeming omission in the text is made good in my translation by Shaikh Zain's

NO DETAIL OF ENVOY/HOW ENVOY WAS SENT,
NO DETAIL OF ARRIVAL OF ENVOY
NO DETAIL OF PROPOSAL

AHMAD YALGAR MAKES NO REFERENCE OF ENVOY SENT BY RANA SANGA

NO OTHER MUSLIM HISTORIAN GIVES ANY SUCH DETAIL OF ANY ENVOY SENT BY SANGA

ALSO, BABUR MAKES THE ABOVE REFERENCE AFTER HIS ARRIVAL IN INDIA, NOT BEFORE HE EXPEDITION TO INDIA, THIS ITSELF IS A GREAT QUESTION MARK

HERE, HE EVEN MENTIONS HOW DAULAT KHAN SENT HIM MANGOES, THAT TOO THAT THEY WERE HALF-RIPENED

यहाँ यह जानना भी दिलचस्प है कि चगताई भाषा में बाबर द्वारा लिखी गई मूल बाबरनामा की कहीं कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। उसकी मृत्यु के छ: दशक बाद अकबर के शासनकाल में अब्दुल रहीम द्वारा इसे फारसी में फिर से लिखा गया। आज हम जो बाबरनामा देखते हैं, वह इसी पुनर्लिखित संस्करण का अनुवाद है।

यहाँ एक और पक्ष का भी विश्लेषण करना जरूरी

SOURCE: GOPINATH SHARMA IN "MEWAR AND MUGHAL EMPERORS"

Close students of Baburnama are aware how sometimes he deliberately gave wrong facts. For example, he stated more than once in positive terms that he had 12,000 men[28] all told in his fight against Ibrahim Lodi. Modern research[29], however, has shown that he had a much larger number at the field of Panipat. And

SOURCE: JADUNATH SARKAR IN "MILITARY HISTORY OF INDIA"

Babur's strength in this battle is not definitely stated in his *Memoirs*. The court historian of Akbar says that it was 12,000 cavalry, but that must have been the number of his choice Turkish horsemen or first-class troops. To these we must add his foot musketeers and Indian allies, as well as the hordes of Afghan and Turki adventurers drawn to his standard by the lure of gold. Lt.-Col. Wolseley Haig estimates Babur's forces in this battle at 25,000 men.

है कि क्या बाबर ने (या बाबरनामा के फारसी लेखक ने) अपनी आत्मकथा में हमेशा सच ही लिखा है अथवा नहीं? अनेक इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया है कि बाबर ने अपने संस्मरण में कई जगह मिथ्या बातें लिखीं हैं जो उस समय के अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से मेल नहीं खाती हैं। गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स' में लिखा है कि किस तरह बाबरनामा में पानीपत की लड़ाई में बाबर के सैनिकों की संख्या कम करके बताई गयी है। यही निष्कर्ष सर जदुनाथ सरकार ने भी निकाला है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है कि बाबर **अपने पास महाराणा साँगा के द्वारा भेजे गए किसी ऐसे प्रस्ताव का वर्णन किस प्रकार करता है? भारत में उसके आगमन और पानीपत के युद्ध (1526) के बाद,** उस समय जब महाराणा साँगा से उसका युद्ध अवश्यम्भावी है, जबकि दौलत खान लोदी के प्रस्ताव का वर्णन वह करता है, भारत पर अपने अभियान की शुरुआत में!

आगे बढ़ते हुए अब हम विचार करते हैं महाराणा साँगा को इब्राहीम लोदी को हराने के लिए किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता पर। महाराणा साँगा ने इब्राहीम लोदी को पहले ही दो लड़ाइयों में बुरी तरह हराया था :-

पहली है 1518 की खतोली की लड़ाई जिसमें विजय के बाद महाराणा साँगा ने उत्तरी पूर्वी राजस्थान को अपने कब्जे में कर लिया था और इब्राहीम लोदी के एक बेटे को बंदी बना लिया गया था।

दूसरी है 1519 की बाड़ी (धौलपुर) की लड़ाई जिसमें महाराणा साँगा के 15,000 राजपूतों ने इब्राहीम खान के नेतृत्व में आये 40,000 मुसलमानों को हराया। इस विजय से मालवा का बहुत बड़ा हिस्सा जिसमें चंदेरी और गागरोन भी शामिल थे, महाराणा के कब्जे में आ गया। इस हार से नाराज लोदी जनरल हुसैन खान ने अपने अमीरों को यहाँ तक ताना दिया कि शर्म की बात है कि एक मुट्ठी भर हिन्दुओं ने 40,000 मुसलमानों को हरा दिया।

इसके अलावा राणा साँगा ने 1517 में ईडर में अपने समर्थक रायमल को स्थापित करने के लिए गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर शाह की सेना को बुरी तरह हराया था। 1520 में जब गुजरात के सुल्तान ने फिर से ईडर पर कब्जा किया तो महाराणा ने गुजरात पर चढ़ाई कर उसे बुरी तरह से तहस-नहस कर गुजरात के सुल्तान को चंपानेर भागने के लिए मजबूर कर दिया। गागरोन की लड़ाई (1519) में, महाराणा ने गुजरात और मालवा के सुल्तानों की संयुक्त सेनाओं को हराया, यहाँ तक कि महमूद खिलजी को छः महीने कैदी के रूप में रखा। मालवा में हिन्दुओं से जजिया हटाया। महाराणा ने उन्हें तीन बार हराया। महाराणा की सभी विजयों के लिए तो एक अलग लेख लिखना पड़ेगा, परन्तु इस संक्षिप्त वर्णन से भी यह देखा जा सकता है कि महाराणा साँगा ने इस समय तक अपनी सभी लड़ाईयाँ जीती थी और मेवाड़ के ध्वज तले इकट्ठा हुए राजूपत इस समय अपनी शक्ति के चरम पर थे। **ऐसी स्थिति में यह मानना है कि इब्राहीम को हराने के लिए महाराणा को बाहरी मदद की जरूरत थी वो भी बाबर की, जिसने अभी तक अपने आपको भारत में कहीं साबित भी नहीं किया था, किसी भी प्रकार से तार्किक नहीं है।**

तो क्या महाराणा साँगा और बाबर के बीच कोई संवाद पहले हुआ ही नहीं था? इस बारे में एक हैरत की बात यह है कि एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण साक्ष्य को अधिकतर इतिहासकारों द्वारा जान-बूझकर नजर-अंदाज कर दिया गया है। जिस किसी ने भी मेवाड़ के इतिहास को गहराई से पढ़ा है, उन्हें यह निश्चित ही ज्ञात होगा कि इस पूरे मुद्दे का उल्लेख मेवाड़ राजदरबार की दैनिक डायरी में भी किया गया है, जिसमें लिखा गया है कि **बाबर ने महाराणा साँगा से मदद लेने के लिए अपना दूत भेजा था न कि इसके उल्टा जैसा कि प्रचारित कर दिया गया है।**

इतिहासकार गोपीनाथ शर्मा ने प्रचलित की गयी धारणा के विपरीत बाबर द्वारा महाराणा को इस तरह का प्रस्ताव भेजे जाने की बात के अधिक प्रामाणिक होने के कारणों को निम्न पाँच बिन्दुओं में सारगर्भित किया है :-

That the above view is not improbable will be clear from the fact that Babur was to embark on an expedition against the ruler of Delhi whose resources in men and money were far superior to those of his own and, therefore, the issue of the proposed contest was in doubt. Under these circumstances it was in Babur's interest to seek an alliance with greatest and most powerful enemy in India. In the second place Sanga did not at this time stand in need of an alliance with Babur who had yet to establish his reputation in India. Thirdly, the view that Sanga sent an envoy to Kabul goes against the Rajput and, in fact, Hindu habit of sitting on the fence and waiting to see as to which side won before deciding a line of action. Fourthly, unlike his usual practice Babur here gives no details of his alliance though he has elsewhere given the details of his agreements with Alam Khan Lodi and Dolat Khan Lodi.[27] Fifthly, it will be too much to think that Babur always stated the whole truth.

पहला यह कि अपने से कहीं अधिक संसाधनों वाले दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध अभियान पर बाबर निकला था न कि महाराणा साँगा और इस आगामी भिडन्त को लेकर संशय की स्थिति बाबर के मन में होनी थी न कि महाराणा साँगा के मन में (जो इब्राहीम लोदी को दो बार पहले ही हरा चुके थे।)।

दूसरा यह कि ऐसी परिस्थितियों में यह बाबर के हित में अधिक था कि वो इब्राहीम लोदी के भारत में सबसे बड़े और ताकतवर शत्रु (महाराणा साँगा) का साथ माँगे न कि महाराणा साँगा के हित में कि वो बाबर जैसे

26. MS. Mewar-ka-Sankshipta Itihas, F. F. 155 (a), 136 (a). The text runs as follows:—

"जब बादशाह बाबर काबुल में राज्य करता था उसने विचारा कि भारतवर्ष का राज्य लोदी बादशाह करते हैं उनको नष्ट करके दिल्ली में अपना राज्य स्थापन करो परंन्तु अज्ञात देश में जाना वहां के किसी प्राचीन राज्य की मित्रता से अच्छा हूं जब उसने दिल्लीस इब्राहीम लोदी और मेदपाटेश्वर की वैमनस्यता श्रवण करी तब अपना एक अमात्य चित्रकूटाचल को प्रेषण किया'.....'उस पत्र में बाबर ने यह लिखा था कि इस ओर से तो मैं आकर दिल्ली में अपना अधिकार करूँगा अरु उस ओर से आप आन कर आगरे में अपना राज्य स्थापन करें"।

ऐसे किसी शासक की सहायता माँगे जिसको भारत में अभी तक अपनी ताकत साबित करनी थी।

तीसरा यह कि महाराणा साँगा द्वारा ऐसा कोई प्रस्ताव भेज कर युद्ध के मैदान में दो पक्षों में किसी की हार जीत का फैसला होने की प्रतीक्षा कर फिर मैदान में कूदने की बात उस समय की रजपूती और हिन्दू परम्परा के बिल्कुल विपरीत है।

चौथा यह कि बाबर ने आलम खान लोदी और दौलत खान लोदी के साथ हुए अपने सैन्य समझौते के विपरीत महाराणा साँगा के साथ हुए किसी ऐसे समझौते का कोई भी विवरण नहीं दिया है।

पाँचवा यह कि बाबर द्वारा जगह-जगह झूठ बोलने की बात उसकी आत्मकथा को ध्यान से पढने से बार-बार साबित हो जाती है।

लेकिन इन सब बातों के बावजूद भी अगर यह मान लिया जाये कि महाराणा ने बाबर को आक्रमण के लिए उसको आमंत्रित किया था। लेकिन क्या यह बात तार्किक लगती है? नहीं, क्यूँ? क्योंकि **पानीपत की लड़ाई भारत पर बाबर का पहला आक्रमण नहीं था, बल्कि यह उसका भारत पर पाँचवा आक्रमण था।**

EARLY EXPEDITIONS; CIRCUMSTANCES LEADING TO THE FIRST BATTLE OF PANIPAT

First Raid: In 1503, while he was a guest of the headman of the village of Dikhkat in Trans-Oxiana during one of his periodical wanderings, Babur, for the first time, heard from the lips of a contemporary, the headman's mother, aged 111, the story of Timur's invasion of India. His imagination was kindled and he formed the resolution of one day repeating the Indian exploits of his great ancestor. But it was only when his ambition towards the north-west was finally foiled that he decided to try his luck in the south-east. While king of Kabul, he undertook four expeditions to the territory of India. All these were in the nature of reconnaissances. Early in 1519 he undertook his first expedition to India. It was directed against the Yusufzai tribe which was turbulent and would not pay tribute except at the point of the bayonet. After they had been duly punished, Babur proceeded further to Bajaur, which he stormed, his new artillery playing a decisive part in the contest that proved to be stubborn. He ordered the wholesale massacre of the people of the place in order to strike terror into the surrounding population. The fort of Bajaur was occupied. Then he proceeded to the town of Bhera on the Jhelam, which, too, was occupied, the people submitting without offering resistance. Khushab, too, fell into his hands; but he gave orders that no injury should be done to the people. He looked upon the Panjab as his own, for it had been conquered by Timur in 1398-9. "As it was always in my heart to possess Hindustan," writes Babur, "and as these several countries had once been held by the Turks, I pictured them as my own, and was resolved to get them into my hands, whether peacefully or

received disturbing news from Kandhar, where Shah Beg Arghun was creating strife in his rear. So he returned to that town with the object of bringing it under his possession. During the next two years he engaged himself in an enterprise against Shah Beg and in 1522 he succeeded in acquiring the fort of Kandhar through the treachery of its governor, Maulana Abdul Baqi. Shah Beg Arghun, who had abandoned Kandhar, established himself as the ruler of Sindh.

Fourth Expedition: Babur was now free from complications at home and, in the event of an invasion of India, he felt secure in his rear, as the formidable fort of Kandhar was now in his possession. At this time he received an invitation from Daulat Khan Lodi, governor of the Panjab, who, being on bad terms with Sultan Ibrahim of Delhi sought his help in making himself master of the Panjab in return for a promise to recognise Babur as his sovereign. Babur readily accepted the invitation and proceeded towards Lahore at

Second Raid: In September 1519 Babur again turned towards India. He marched through the Khaibar Pass in order to reduce the Yusufzai Afghans to submission. Then he made an attempt to fortify and provision Peshawar to convert it into a base for further operations, but he had to return to Kabul without accomplishing his object, as he had received news of disturbance in Badakhshan.

Third Raid: In 1520 Babur undertook his third expedition to India and recovered Bajaur and Bhera, from where his men had been expelled in 1519. Then he proceeded to Sialkot which was capitulated without resistance. But the people of Sayyidpur, who did not like to submit tamely, had to be subdued by force. Meanwhile, Babur received disturbing news from Kandhar, where Shah Beg Arghun was creating strife in his rear. So he returned to that town with the object of bringing it under his possession. During the next two years he engaged himself in an enterprise against Shah Beg and in 1522 he succeeded in acquiring the fort of Kandhar through the treachery of its governor, Maulana Abdul Baqi. Shah Beg Arghun, who had abandoned Kandhar, established himself as the ruler of Sindh.

Fourth Expedition: Babur was now free from complications at home and, in the event of an invasion of India, he felt secure in his rear, as the formidable fort of Kandhar was now in his possession. At this time he received an invitation from Daulat Khan Lodi, governor of the Panjab, who, being on bad terms with Sultan Ibrahim of Delhi sought his help in making himself master of the Panjab in return for a promise to recognise Babur as his sovereign. Babur readily accepted the invitation and proceeded towards Lahore at

इस तरह के निरन्तर आक्रमणकारी को पानीपत से पहले अचानक महाराणा साँगा के आमंत्रण की जरूरत पड़ गयी? वामपंथी यहाँ इस तथ्य को नकार देते हैं कि बाबर ने स्वयं लिखा है कि किस प्रकार भारत पर तीसरे हमले के बाद वह अपनी घरेलू समस्याओं से निजात पा चुका था और कंधार जैसा मजबूत किला उसकी पीठ पर उसको सुरक्षा देने के लिए उसके कब्जे में था और अब बाबर अपना ध्यान पूरी तरह भारत पर केन्द्रित कर सकता था। तथ्य यह है कि बाबर को किसी आमंत्रण की नहीं बल्कि अवसर की तलाश थी जो उसे दौलत खान लोदी और इब्राहीम लोदी की परस्पर फूट से मिला और उसने भारत में इसका फायदा उठा कर अपने पैर जमाये।

अत: महाराणा साँगा द्वारा बाबर को भारत में

आमंत्रित करने का दावा तार्किक और ऐतिहासिक दोनों ही आधारों पर गलत साबित होता है।

साथ ही यहाँ एक बिन्दु यह भी विचारणीय है कि हमारी इतिहास की किताबों में पानीपत की लड़ाई को अधिक महत्त्व देते हुए इसे भारतीय इतिहास की निर्णायक लड़ाई बता दिया जाता है जबकि वास्तविकता यह है कि पानीपत तक आते-आते लोदी सल्तनत खोखली हो चुकी थी और दिल्ली के सिंहासन के दो नए दावेदार पैदा हो गए थे। जिसमें एक तरफ बाबर के नेतृत्व में मुगल थे और दूसरी तरफ महाराणा के नेतृत्व में राजपूत। **इस तरह भारत के भाग्य का निर्धारण खानवा की लड़ाई (1527) से हुआ न कि पानीपत की लड़ाई से।**

एक निश्चित विचारधारा के इतिहासकारों द्वारा भारत पर मुस्लिम आक्रमण के लिए यहाँ के शासकों को जिम्मेदार ठहरा कर जनमानस को आत्मग्लानि एवं दोषारोपण करने के लिए एक लक्ष्य जिस प्रकार मुहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमण के लिए बिना किसी ऐतिहासिक प्रमाणों के महाराजा जयचंद को दोषी बताकर दिया गया है, ठीक उसी प्रकार बाद के मुगल शासन के लिए ऐसा ही एक लक्ष्य महाराणा साँगा के रूप में खोज लिया गया है।

परन्तु एक समाज के रूप में हमारे लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या कारण है कि ऐसा दूषित प्रचार इस देश में वामपंथी दक्षिणपंथी सभी के द्वारा बनाये रखा गया है?

इस बात को बिल्कुल भी नहीं नकारा जा सकता है कि आज के समय में राजपूत समाज (और उनका इतिहास) इस देश में सबसे अधिक निन्दित रूप से विवेचित किया जाने वाला समूह है जिसके विरुद्ध तरह-तरह के घृणित अलंकरण गढ़ दिए गए हैं। इस देश के ख्यातिप्राप्त लेखक जहाँ एक तरफ राजपूत-मुगल संबंधों का बार-बार उल्लेख कर उन्हें किसी विदेशी सत्ता के भारत में पैर जमाने का जिम्मेवार और उनके सहभागी साबित कर उन्हें आम जनमानस में घृणा का पात्र बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर इन्हीं संबंधों का प्रयोग बड़ी चतुराई से मुस्लिम शासकों को धर्म सहिष्णु साबित करने में भी करते हैं।

राजपूतों के विरुद्ध इस देश में इन लेखकों के दिए कई तरह के कथानक चलते हैं, जैसे 'पराजय-विशेषज्ञ', 'मुगलों को बेटियाँ देने वाले', 'अंग्रेजों का साथ देने वाले' आदि-आदि। ये सब कथानक बहुत ही सफलतापूर्वक इस देश के जनमानस में कूट-कूटकर भर दिए गए हैं। वर्तमान में भी कहीं 'ठाकुरवाद' का भय जनमानस में बैठाया जा रहा है तो कहीं कुछ और दुष्प्रचार चल रहा है। ऐसे कथानकों के लगातार अबाध चलते रहने का एक पहलू यह भी है कि राजपूत समाज के बौद्धिक वर्ग को कहीं भी अपनी बात रखने से इस तरह वंचित कर दिया गया है ताकि वे अपने समाज का ऐसे दुष्प्रचार के विरुद्ध बचाव न कर पायें।

सार्वजनिक जीवन के ऐसे कथानक राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं से परे नहीं होते हैं। इतिहास लेखन बिरले ही निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ होता है। इतिहास का प्रस्तुतीकरण हमेशा राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं का रंग लिए ही होता है और किसी कथानक को जनमानस में कितनी वैधता मिल रही है यह उस कालखण्ड में प्रभावी सामाजिक-राजनैतिक समीकरणों का सूचक होता है। इस तरह के प्रायोजित प्रचार एक अलग पहचान को जन्म देते हैं और हर कथानक में एक विशेष उद्देश्य के लिए बनायी गयी एक तार्किक संरचना होती है जिससे कि उस उद्देश्य विशेष की पूर्ति हेतु विशिष्ट निष्कर्ष निकाला जाता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर विचार करें तो राजपूत समाज के विरुद्ध चल रहे इन कथानकों का एकतरफा स्वरूप वस्तुतः सच-झूठ से परे, इस देश के राजनैतिक-बौद्धिक नेतृत्व के मन में राजूपत समाज के प्रति गहरी कड़वाहट को उजागर करता है।

Sources : 1. Baburnama by Annette Beveridege, 2. Military History of India by Jadunath Sarkar, 3. Mewar and Mughal Emperors by Gopinath Sharma, 4. Al Srivastava, History of India

❑

क्षत्रिय का धर्म-अन्याय का प्रतिकार

- नरेन्द्रसिंह नरधारी

चारों ओर हरियाली ही हरियाली। किसान अपने हरे-भरे लहलहाते खेतों को देखकर आनंदित हैं। एक किशोर बालक दुर्गादास भी अपने खेतों में यौवन की अंगड़ाई लेती फसल को देखकर अति प्रसन्न हो रहा था। मन ही मन सोच रहा था, इस बार फसल अच्छी हुई है, भगवान इन्द्र की कृपा दृष्टि रही है, गरीब किसान खुश होंगे, धन-धान्य से सभी लोग परिपूर्ण होंगे। वर्षों से ऐसी मेहरबानी प्रकृति की हुई है। ऐसा वह सोच ही रहा था कि उसकी दृष्टि कुछ दूरी पर खेतों पर पड़ी जहाँ कुछ राईके ऊंटों के दल के साथ उसके खेतों की ओर आ रहे थे। उसने अपनी सुरक्षा के लिये रखी तलवार संभाली उसे मालूम हो गया कि इन राईको की नीयत ठीक नहीं है, उसके देखते ही देखते ऊंटों का झुंड का झुंड उसके खेतों में घुस गया तथा फसलों को खाने लगा। यह देखते ही उसके तन बदन में आग लग गई, वह अपनी तलवार लेकर उस ओर दौड़ पड़ा।

'अरे....रुको! ऊंटों को कहाँ घुसा रहे हो? देखते नहीं हमारी सारी फसल चौपट हो जाएगी' दुर्गादास तेज आवाज में बोला। राइकों के मुखिया ने लापरवाही से उत्तर दिया-'हो जाएगी तो हो जाएगी। तुझे मालूम नहीं है यह जोधपुर दरबार के ऊंट हैं कहीं भी चर सकते हैं।' दुर्गादास गुस्से से ऊंटों के पास जाकर उन्हें फसल खाने से रोकने लगा तथा ऊंटों को पीछे खदेड़ने लगा। यह देख राइके गुस्से में आ गए। 'अरे नालायक! तुझे उसका उचित दंड मिलेगा। राजा के ऊंटों से तू खिलवाड़ करता है, ठहर जा तुझे मजा चखाता हूँ।' ऐसा कहकर वह दुर्गादास को मारने दौड़ा। अपनी ओर राइके को तलवार लेकर आते हुए देखकर दुर्गादास ने अपनी तलवार संभाली तथा कड़कती आवाज में कहा-'खबरदार, जो एक कदम भी आगे बढ़ाया, माँ भवानी की सौगंध, चीर कर रख दूंगा।' 'अरे मूर्ख! राजा के राईकों से जबान लड़ाता है। यहाँ से हट जा वरना जान के लाले पड़ जाएँगे' राइके ने कठोर आवाज में कहा।

'देखो! मैं कहता हूँ अपने ऊंटों को लेकर यहाँ से चले जाओ वरना तुम्हारी खैर नहीं है।'

'अरे हमारी खैर लेने वाले! सम्भल और ले अपनी जान बचा।' राईके ने तलवार से दुर्गादास पर वार किया। दुर्गादास ने तुरन्त ही पैंतरा बदल अपने को पीछे हटा लिया। राईकों ने अपनी-अपनी तलवारें निकाल उसे चारों ओर से घेर लिया। तभी दुर्गादास ने उछल कर एक भरपूर वार उसके मुखिया पर किया। तलवार उसकी गर्दन को चीरकर धड़ के आर पार हो गई। रक्त की बौछार देख, चीत्कार सुनकर शेष सभी राइके जान बचाकर भाग गए। खून से सनी तलवार के साथ दुर्गा अपने रौद्ररूप में लग रहा था। चीख-पुकार से सारा गाँव इकट्ठा हो गया। दुर्गा से सारी घटना जब गाँव वालों ने सुनी तो सभी चिंतित हो उठे। इतने में दुर्गा की माँ भी आ गई....'क्या हुआ? अरे यह क्या....किसने किया यह खून?'

'मैंने, माँ। ये अन्यायी अपनी फसलों को चौपट कर रहे थे। मैंने उन्हें समझाया परन्तु माने नहीं, उल्टे मुझ पर ही आक्रमण कर बैठे। मुझे मारने के लिए सभी मेरी ओर दौड़ पड़े थे। अपनी जान बचाने के लिए हुए वार से यह मारा गया' दुर्गादास ने कहा।

'कोई बात नहीं बेटा, होनहार बलवान होता है। तू चिंता मत कर, माँ भगवती सब ठीक करेगी। यदि राजा तुझे बुलाए तो वहाँ दरबार में सत्य बात देना'... माँ ने कहा। (दुर्गादास की माँ भी आदर्श वीरांगना क्षत्राणी थी, जो संस्कार बचपन में जयवंता बाई ने प्रताप को दिए, जीजाबाई ने शिवाजी को दिए, वही क्षात्रधर्म के संस्कार नेतकुंवर ने दुर्गादास को दिए थे।)

सभी लोग दुर्गादास का लोहा मान अपने-अपने घर चले गए। उधर राइकों ने राजा से गुहार की तो राजा ने सैनिक भेजकर दुर्गादास को दरबार में उपस्थित होने के

(शेष पृष्ठ 31 पर)

जदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराज पालसिंह इनायती

''करौली राजवंश जो कि चंद्रवशी यदुवंश या जादौन भी कहा जाता है संसार के कुछ प्राचीनतम राजवंशों में आता है जिनका 5000 वर्षों से भी अधिक का पीढ़ी दर पीढ़ी साक्ष्य उपलब्ध है प्रारम्भ में यदुवंश की वंशावली हरिवंश पुराण एवं श्रीमद् भागवत महा पुराण में मिलती है जो बाद में पांचवी छठी शताब्दी से वंशावली लेखकों की पोथियों में भी उपलब्ध होती है। कुछ वर्णन विजयपाल रासो में है तथा बाद का वंशावली लेखकों एवं करौली राज परिवार की परम्परागत बहियों में भी उल्लिखित है। कुछ लोग पुराणों में उल्लिखित वर्णित तथ्यों को कपोल कल्पित कहकर उड़ाते हैं लेकिन अभी हाल ही में अरब सागर में समुद्र में 100 फीट गहराई में खोजे गए द्वार का नगरी के अवशेषों के अनुसार श्री कृष्ण की नगरी द्वारका के होने के बारे में कार्बन डेटिंग के 5000 वर्ष पूर्व के होने के साक्ष्य मिले हैं जो श्री कृष्ण और यदुवंश के उस समय के अस्तित्व के बारे में मजबूत साक्ष्य है। जदुवंश के बारे में यदि हम पुराणों से लेकर अब तक समस्त साक्ष्यों का सिलसिलेवार विवेचन करें तो क्रम इस तरह उभर कर आता है :

प्रलय में और उसके बाद केवल ॐ या प्रणव अथवा एकमात्र नाद ब्रह्म अस्तित्व में था। ॐ से भगवान नारायण प्रगट हुए, नारायण से क्रमश: कमल, अज, मरीच और मरीच से अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए। इन अत्रि ऋषि के नाम पर ही यदुवंशी अत्रि गोत्र के कहे जाते हैं।

श्रीमद् भागवत महापुराण के नवम स्कंध के 14वें अध्याय के दूसरे और तीसरे श्लोक के अनुसार अत्रि ऋषि से सोम/चंद्र की उत्पत्ति हुई जिस के संसर्ग से तारा ने बुध को जन्म दिया। (श्रीमद् भागवत महापुराण, 9/14/13)।

बुध ने इला से शादी की और उनसे पुरुरवा हुए। यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रथम बार अग्नि को अरणी मंथन की सहायता से पुरुरवा द्वारा उत्पन्न करने का उल्लेख आया है (9/14/44-49)! पुरुरवा से प्रतापजुत/आयु नाम के पुत्र हुए। Col. Tod के अनुसार आयु तातार म्लेच्छों के पूर्व पुरुष कहे गए। तातार भाषा में आयु का अर्थ चंद्र होता है, जो लगता है कही चंद्र वंश से संबंधित है (Col Tod: Anals and Antiquities of Rajputana VII Ch. 1) प्रतापजुत के नहुष हुए जो श्रापवश राजगद्दी से च्युत हुए और उनके बड़े पुत्र यति द्वारा राज्य ग्रहण करने से इनकार करने पर ययाति राज सिंहासन पर बैठे। ययाति ने असुर वृषपरवा के गुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से शादी की। देवयानी ईर्ष्या वश दानव राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को अपने साथ दासी के रूप में ले गई। देवयानी से ययाति को यदु एवं तुर्वसु नाम के दो पुत्र हुए, वहीं शर्मिष्ठा से भी ययाति को तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे द्रह्यु, अनु और पुरु। जब देवयानी को ययाति और शर्मिष्ठा के संबंधों का मालूम चला तो वह नाराज होकर अपने पिता शुक्राचार्य के घर चली गई। शुक्राचार्य अपनी पुत्री की अवहेलना से रुष्ट हुए और उन्होंने ययाति को वृद्धावस्था का श्राप दे दिया। ययाति के बार-बार क्षमा माँगने पर शुक्राचार्य ने कहा कि यदि कोई तुम्हारी वृद्धावस्था लेकर अपना यौवन तुम्हें दे दे तो तुम पूर्ववत हो जाओगे। उसने अपने सभी पुत्रों से अपने यौवन को वृद्धावस्था के बदले देने के लिए अनुरोध किया लेकिन पुरु के सिवा किसी ने उसे स्वीकार नहीं किया (श्रीमद् भागवत महापुराण 9/18/45)।

ययाति के बाद उसका साम्राज्य यदु और पुरु के बीच बंट गया तथा यदु के नाम पर ही इस वंश को यदुवंश का नाम मिला। यदु के बाद क्रमश: क्रोष्ठा, पृथु, विंदुरथ, हृद्दीक, देवमीढ़ और शूरसेन हुए, जिनके नाम पर यदुवंश की एक शाखा शूरसेनी कहलाई और मथुरा जनपद भी शूरसेनी क्षेत्र कहलाया गया। शूरसेन के पुत्र वसुदेव हुए जिनके दो पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण हुए जिनका लालन-

पालन वसुदेव के अहीर सखा नंदबाबा और यशोदा के यहाँ हुआ। श्रीकृष्ण और रूक्मणी के ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न हुए जिनके पुत्र अनिरुद्ध थे जिनका विवाह शोणितपुर के राजा वानासुर की कन्या उषा से हुआ और उनसे वज्रनाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीकृष्ण ने द्वारका नगरी बसाई लेकिन उनके ही जीवनकाल में प्रभाष क्षेत्र में यदुवंशी आपस में लड़ भिड़कर नष्ट हो गए :

''वारूणी'म मदिरा'म पीत्वा मदोन्महित चेतसाम्।
अजन्तामि वन्योनवा'म चतु: पंचाव शोषिता''।।

(श्रीमद् भागवत महापुराण 1/14/23)

श्रीकृष्ण के महाप्रयाण के बाद शेष बचे चार या पाँच यदुवंशियों और उनकी स्त्रियों को अर्जुन मथुरा ले आए जहाँ युधिष्ठिर ने वज्रनाभ को यदुवंशियों की परम्परागत गद्दी पर राज्याभिषेक कर दिया :

''मथुरायाम् तथा वज्रम् शूरसेन पति'म तत्,
प्रजापत्याम निरुपवेशितम्निन पिबदीश्वर।''

(श्रीमद् भागवत महापुराण 1/14/39)

यही तथ्य श्रीमद् भागवत महापुराण के 11/32/25वें श्लोक में भी उद्धृत है। वज्रनाभ के प्रतिबाहु, रविसेन, विशाल, सुमंत, चित्रसेन और सुषेण हुए। इसी कड़ी में आगे चलकर ईच्छपाल और उनके बाद मथुरा के अन्तिम जदुवंशी राजा जयेन्द्र पाल हुए। जयेन्द्र पाल के समय में म्लेछों के मथुरा पर बहुत आक्रमण होने लग गए थे। मथुरा चूंकि मैदानी क्षेत्र में बसा हुआ था इसलिए उसकी सुरक्षा मुश्किल से हो पा रही थी, इसी को ध्यान में रखते हुए जयेन्द्र पाल ने अपने सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र विजय पाल को मथुरा से लगभग 80 कि.मी. दक्षिण में मणि पहाड़ पर एक सुदृढ़ किला बनाने की जिम्मेदारी दे अपनी राजधानी वहाँ स्थानांतरित कर दी। विजयपाल श्रीकृष्ण से 84वीं पीढ़ी में बहुत ही पराक्रमी राजा थे जिनका राज्य मालवा, गुजरात के कुछ भागों एवं वर्तमान राजस्थान के एक बड़े भू-भाग पर था।

(राव शिवराज पालसिंह, इनायती की शीघ्र प्रकाशय Legacy of Jaduvanshi Dynasty of Karauli के एक अध्याय का हिन्दी रूपान्तरण)

❑

मैं रोज डायरी लिखता हूँ

– कुं. मायावी

अहं को तिल तिल मिटाने
सुप्त सामर्थ्य को जगाने
हृदय के आवरण हटाने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

आत्म अवलोकन करने
मार्ग के गहरे गर्त भरने
भव मुसीबतों से तरने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

स्वयं की दुर्बलता जानने
अंतकरण की बात मानने
भीतरी शत्रु से युद्ध ठानने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

शंका का समाधान पाने
व्यवहार में माधुर्य लाने
जागरण के नवगीत गाने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

संघमार्ग पर कदम बढ़ाने
अपनों से दूरियाँ मिटाने
बंधुत्व की हूक जगाने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

माया का पाश तोड़ने
दृष्टि को भीतर मोड़ने
जड़धर्मिता को छोड़ने
मैं रोज डायरी लिखता हूँ।।

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

भय तथा आतंक के प्रभाव :

नाग के उठे हुए फन तथा उसकी भयावह मुखाकृति को देखते ही चूहा भय के मारे अधमरा तथा जड़ हो जाता है। बाघ की निगाह में आते ही बन्दर इतना भयभीत हो जाता है कि सुरक्षित ऊँचाई पर होने के बावजूद उसके हाथ शिथिल हो जाते हैं और डाली छूट जाने के कारण वह बाघ के सामने गिरकर उसके मुख का निवाला बन जाता है।

एक हिरन एक लँगड़े सिंह की दहाड़ सुनता है और भयभीत होकर वह दिशा का विचार किए बिना ही सरपट दौड़ने लगता है। वैसे वह बड़ी तीव्र गति से दौड़ सकता है, परन्तु भय के कारण दिशा का विचार किए बिना दौड़ते हुए वह सिंह के ठीक सामने जा पहुँचता है।

वैसे यह तो स्वाभाविक ही है कि एक चूहा नाग से डरे, बन्दर बाघ की क्रूर दृष्टि से डरे और हिरन सिंह की दहाड़ सुनकर भयभीत हो जाए। भय पहले से ही सावधान हो जाने और आत्मरक्षा का एक साधन है। परन्तु भय का अतिरेक सुरक्षा का साधन होने के स्थान पर, उलटे घातक सिद्ध हो सकता है।

ऐसी भी घटनाएँ होती हैं, जब व्यक्ति अँधेरे में कुछ देखकर, उसकी भूत या चोर के रूप में कल्पना करके भयभीत हो जाता है।

एक व्यक्ति ने कहा, 'मैं भूत-प्रेतों के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता, परन्तु अँधेरी रात में कहीं अकेले जाने में मुझे भय लगता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई मेरे पीछे-पीछे चल रहा हो। इसके फलस्वरूप मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।' दूसरे व्यक्ति ने कहा, 'राहु, केतु और शनि से प्रभावित तथाकथित अशुभ कालों के अनुसार चलना अन्धविश्वास तो है, परन्तु इन मुहूर्तों में मैं कोई भी शुभ कार्य आरम्भ करना नहीं चाहता। क्योंकि मैं अपनी पत्नी और बच्चों की भावनाओं को आहत नहीं करना चाहता।'

हम बचपन में कई प्रकार के भयों को आत्मसात् कर लेते हैं और वे हमारे मन में गहरी जड़ें जमाए रहते हैं। यदि हम उन्हें हटाने का प्रयास भी करें, तो भी वे हमें नहीं छोड़ते। वे निष्क्रिय भी नहीं रहते। हमारे भीतर छिपे रहकर वे प्राय: ही हमारी उन्नति की राह में बाधाएँ तथा रोड़े अटकाते रहते हैं।

एक नया-नया साइकिल चलाना सीखने वाला विपरीत दिशा से आ रहे वाहनों से घबराकर अपना सन्तुलन खो बैठता है और गड्ढे में गिरने से बचने का प्रयास करता है, परन्तु भय से त्रस्त वह सँभलते-सँभलते भी गड्ढे में गिर ही पड़ता है।

परीक्षा में बैठने के पूर्व तक छात्रगण अध्ययन करते रहते हैं, ताकि कहीं वे परीक्षा-कक्ष में कुछ भूल न जाएँ। तो भी प्रश्न हल करते समय वे प्राय: कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को भूल ही जाते हैं और कक्ष से बाहर निकलते ही उन भूली हुई बातों को याद करके अपनी स्मृति-लोप पर पश्चाताप करते हैं। परीक्षा-भय से उत्पन्न दु:ख का तो अन्त ही नहीं है। इसी भय के कारण छात्रगण अनुचित साधनों का उपयोग करने लगते हैं। क्या इस भय को दूर करने का कोई उपाय नहीं है?

चिन्ता का मकड़जाल :

जब भय तथा चिन्ता एक साथ क्रियाशील होती हैं, तो हमारी कल्पना के हानिकारक और खतरनाक चित्र वास्तविक रूप धारण कर लेते हैं।

एक व्यक्ति बातचीत करने में अत्यन्त कुशल था और उस दिन उसे अपना पहला भाषण देना था। उसने एक प्रभावशाली भाषण देने का पक्का इरादा किया था और इसके लिए उसने ठोस तैयारी भी कर ली थी।

अभ्यास करते समय उसने अपने परिवार के सदस्यों को भी अपना भाषण सुनाया था। अपने सर्वोत्तम वेष में सज्जित होकर, चेहरे पर मुस्कान लिए, बड़े स्वाभिमान तथा पूर्ण आत्मविश्वास से वह व्याख्यान-कक्ष में प्रविष्ट हुआ। हर व्यक्ति बड़ी उत्सुकता से उसके मुख की ओर ताक रहा था। जब उसने अपने श्रोताओं पर दृष्टि घुमाई, तो उसे लगा मानो हजारों तीक्ष्ण निगाहें उसे भेद रही हैं। उसके होंठ सूखने लगे। उसने अपने होंठों पर जीभ फेरकर अपने आपको संयत करना चाहा, परन्तु उसके चेहरे पर चिन्ता के भाव प्रकट हो गए। व्याख्यान देने के लिए खड़े होने पर अपनी घबराहट को दबाने के लिए वह एक या दो बार खाँसा भी। ठण्ड का मौसम होने के बावजूद उसे पसीना आने लगा। 45 मिनट के लिए तैयार की गयी वक्तृता को वह 10 मिनट से अधिक जारी नहीं रख सका। बोलते-बोलते वह सहसा रुक गया और अस्वस्थता का बहाना बनाकर घर लौट आया।

बाद में उसने बताया था, 'अनौपचारिक वार्तालाप के समय अपने सामने बहुत-से लोगों को देखकर मुझे जरा भी भय नहीं लगता, पर श्रोताओं के समक्ष मैं बुरी तरह घबरा जाता हूँ।'

भय और तनाव हमारे सारे कार्यों को बर्बाद कर डालते हैं। एक किसान ने हर रोज की भाँति एक दिन सुबह अपने घर के एक कोने में रखे हुए बोरे से बुवाई के लिए बीज निकाले। बीज निकालते समय उसे ऐसा लगा कि उसके पाँव की उँगली में कुछ चुभ गया है। पर उधर ध्यान दिए बिना ही वह सारे दिन खेत में काम करता रहा। शाम को घर लौटकर जब वह बचे हुए बीजों को बोरे में रखने लगा, तभी उसमें से एक साँप निकलकर फुफकारने लगा। साँप को देखते ही उसे सुबह अपने पैर में हुई चुभन की बात याद आ गयी। उसे लगा कि उसे साँप ने ही काटा था। वह वहीं गिर पड़ा और तत्काल मर गया। वह साँप के डँसने से नहीं, बल्कि भय के कारण मरा।

भय की विभीषिका को दर्शाने वाली एक कथा है। एक बार यमराज ने अपने दूतों को पृथ्वी से 400 जीवों को लाने का आदेश दिया। उन लोगों ने कई बीमारियाँ फैलाकर 400 लोगों को मारने की व्यवस्था की। परन्तु जब वे लोग यमलोक पहुँचे, तो उनके साथ 400 लोगों की जगह 800 लोग थे। यमराज ने इस पर क्रोधित होकर अपने आदेश की अवहेलना के लिए उन्हें फटकारा। उन्होंने उत्तर दिया, 'प्रभो, हमने केवल 400 लोगों को ही मारा था, बाकी 400 तो भय से मर गए।'

भय : एक चुनौती :

कर्कश आवाज सुनकर शिशु भयभीत हो जाता है। चलना सीखते समय वह लड़खड़ाने तथा गिरने के भय से ग्रस्त रहता है। भय सभी की एक स्वाभाविक तथा जन्मजात प्रवृति है। हमारे अस्तित्व या स्वाधीनता पर मँडराने वाला कोई संकट या केवल उसके बारे में कोई आशंका भी हमारे मन में भय के बीज बो देती है। जीवन की समस्याओं का सामना करने में अपनी सामर्थ्य में आत्मविश्वास का अभाव ही हमें भयभीत कर देता है। हीन-भावना सहज भाव से भय की ओर ले जाती है। एक बार जब कोई व्यक्ति किसी खतरे का सामना करके सफलतापूर्वक उससे बच निकलता है, तो उसमें साहस तथा आत्मविश्वास आ जाता है। एक बच्चा गिरने के भय से चलने से कतराता है, परन्तु धीरे-धीरे वह न केवल चलना, अपितु दौड़ना भी सीख जाता है। खतरे की भावना से हमें खतरे की बाधाओं को पार करने की युक्ति निकालने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से भय को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह हमारे भीतर के आन्तरिक बल को जाग्रत करने का एक सुअवसर प्रदान करता है।

ईश्वर का भय :

एक कहावत है कि ईश्वर का भय ही ज्ञान का मूल है। पर ईश्वर से भला कोई क्यों डरे? वस्तुत: ईश्वर से डरने की कोई जरूरत नहीं। ईश्वर तो परम प्रेमस्वरूप

हैं। ईश्वर से अधिक प्रियतर हमारा कोई भी नहीं है। प्रेम का अजस्र-स्रोत भय का कारण क्यों हो?

इसकी व्याख्या इस प्रकार हो सकती है, एक सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान ईश्वर विद्यमान है। उनके ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है। उन्हें कोई भी धोखा नहीं दे सकता। इस ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्था वे ही करते हैं। हमारे जीवन में भी एक निश्चित नियम है। जीवन में सफलता पाने के लिए हम सभी को एक निश्चित आचार-संहिता का पालन करना पड़ता है। जैसे नियमित आहार-विहार से स्वास्थ्य ठीक रहता है, वैसे ही आचार-संहिता के पालन से मानसिक बल मिलता है तथा हम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनते हैं। हमें ईश्वरीय राज्य के नैतिक आचारों का पालन करना है-'तुम चोरी नहीं करोगे, तुम हिंसा नहीं करोगे और तुम झूठ नहीं बोलोगे।' नैतिक आचार-संहिता का पालन न करके हम कठिनाइयों को आमंत्रित करते हैं। यदि हम समझ लें कि इन नियमों के उल्लंघन से हमारे आसपास के लोगों को नुकसान पहुँचेगा, तो हम सजग हो जाएँगे और इस उल्लंघन से होने वाली क्षति से डरेंगे। यह सजगता, यह सावधानी भी एक तरह का भय है। यह वांच्छनीय है। वस्तुत: यह एक तरह की चेतावनी है। बुराई के पथ पर चलने का भय, झूठ बोलने का भय, छल-कपट का आचरण करने तथा कर्तव्यच्युत होने का भय हमें इसके उल्लंघन से बचाता है। ऐसा भय एक प्रकार की सुरक्षा है। दुराचार का बीज बोने पर उसका फल निश्चय ही कड़वा होगा।

'विष्णु-सहस्रनाम' में ईश्वर को 'भयकृत् भयनाशन:' (अर्थात् भय को उत्पन्न करने और भय को दूर भगाने वाले) कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पापियों के लिए वे भयस्वरूप हैं, पर सज्जनों को वे भयमुक्त कर देते हैं। भगवान नृसिंह के दर्शन-मात्र से ही हिरण्यकशिपु भयभीत हो जाता है, परन्तु प्रह्लाद जरा भी भयभीत नहीं होते। जो लोग अपनी भूलों को समझकर पश्चाताप करते हुए ईश्वर के शरणागत होकर उनसे क्षमा-याचना करते हैं, ईश्वर निश्चय ही उनकी सहायता करते हैं, ताकि उन्हें आत्मसुधार का मौका मिल सके। यह बिल्कुल सत्य है कि ईश्वर परम दयामय हैं और वे सबकी रक्षा करते हैं, परन्तु पापी व्यक्ति को अपनी पाप-भावना से मुक्त होने के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष करना पड़ता है। विश्वविधाता द्वारा निर्मित आचार-संहिता को जानना और उसका अक्षरश: पालन करना ही सच्चा ज्ञान है। यह ज्ञान जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। ब्रह्माण्ड तथा इसके नियमों के निर्माता के ज्ञान से उत्पन्न सजगता ही सच्चा ज्ञान है। एक वैज्ञानिक प्रकृति के सूक्ष्म नियमों तथा रहस्यों को उद्घाटित करता है, जबकि विश्व के धर्मग्रन्थ, ऋषि-मुनि तथा महापुरुष हमें उचित आचरण और सच्चे धर्म के नियम प्रदान करते हैं।

हमारे देशवासी ईश्वर के बारे में विविध प्रकार के भयों से आक्रान्त रहते हैं। इस भय की जड़ प्राय: बचपन से ही अर्जित उनकी मिथ्या धारणाओं में निहित होती है। कुछ लोग भगवन्नाम का जप करते समय भी आनुष्ठानिक अशुचिता से भयभीत रहते हैं। कुछ लोग इस कारण भयभीत रहते हैं कि भगवान कहीं उन्हें अभिशाप न दे दें। कुछ तो अपनी प्रार्थना आदि साधनाओं में कुछ त्रुटियों या अपूर्णताओं की आशंका से ही उनका पूरी तौर से परित्याग कर देते हैं।

एक ग्रामीण के जीवन की घटना है। एक बार वह बस में चढ़ा और सीट पर बैठने के बाद शीघ्र ही बीमार होकर गिर पड़ा। सहयात्री उसकी मदद के लिए दौड़ पड़े। एक चिकित्सक ने आकर उसे सुई लगाई और जल्दी ही वह स्वस्थ हो गया। वह उठ बैठा और चारों ओर देखने लगा। वह अपनी बीमारी का दोष उस बस पर ही मढ़ने लगा। इस घटना के लिए वह बस के चालक और परिचालक को दोष देने लगा। चूँकि बस में चढ़ने के बाद ही वह बीमार पड़ गया था, अत: वह बस को ही अपनी बीमारी का कारण मानने लगा। वस्तुत: उसने एक होटल में बासी भोजन खा लिया था और विश्राम के अभाव में थकावट के कारण

उसकी तबीयत खराब हो गयी, परन्तु उसे लगा कि बस ही उसकी अस्वस्थता के लिए जिम्मेदार थी। इसी प्रकार, भगवान कभी किसी को क्षति नहीं पहुँचाते। लोग केवल अपने अज्ञान, मूढ़ता तथा अन्धविश्वास के कारण ही कई तरह के झंझटों में फँस जाते हैं।

भयग्रस्त देबू :

देबू इलेक्ट्रिकल फिटिंग में सिद्धहस्त एक युवक था। कुछ ही घण्टों में वह एक पूरे मकान की वायरिंग कर सकता था। एक बार उसके एक परिचित सम्भ्रान्त बुजुर्ग ने उससे कहा, 'तुम्हारे माता-पिता की मृत्यु तपेदिक (टी.बी.) से हुई थी। लगता है तुम्हें भी तपेदिक हो जाएगा।' अगले कुछ दिनों तक ये शब्द उसके मन में गूँजते रहे। इसके बाद उसे जब भी खाँसी आती, वह भयभीत हो जाता। एक पुस्तक में तपेदिक के लक्षणों को पढ़कर वह आतंकित रहने लगा। उसे लगता-मुझमें तो इसके प्राय: सारे ही लक्षण हैं। वह दूसरों से कहता, 'मुझे भोजन में स्वाद नहीं मिलता। रोजाना शामको मुझे लगता है कि मेरे शरीर का ताप बढ़ गया है। कुछ भी करने की इच्छा नहीं होती। मेरे दिन अब पूरे हो चले हैं।' अगले तीन महीनों में उसके स्वास्थ्य में तेजी से गिरावट आई। जब चिकित्सक कहते कि वह बिल्कुल स्वस्थ है, तो भी उसे विश्वास नहीं होता। अनन्त: चिकित्सक ने उसके सीने का एक्स-रे करके उसे रिपोर्ट दिखाते हुए कहा, 'देखो, तुम्हारे फेफड़े ठीक हैं। यह दवा खाओ, एक सप्ताह में तुम पूरी तौर से ठीक हो जाओगे।' उसने एक तपेदिक-रोगी के एक्स-रे के साथ अपने एक्स-रे को मिलाया और तब उसे विश्वास हुआ कि वह तपेदिक की सम्भावना से मुक्त है। कुछ ही दिनों में, देबू पूर्ववत् भला-चंगा हो गया। यदि वह भय तथा सन्देह में ही डूबा रहता, तो कभी स्वस्थ न हो पाता।

भय का मूल :

भय कहाँ से उत्पन्न होता है? खतरे तथा उनसे होने वाली क्षति की आशंका के चिन्तन का प्रभाव हमारे अवचेतन मन पर पड़ता है। भय की तीव्रता बढ़ने के साथ-साथ जब खतरे की कल्पना और भी स्पष्ट होती जाती है, तब हमारा मन इस काल्पनिक भय को वास्तविकता में बदलने लगता है।

देबू ने पहले तो तपेदिक-ग्रस्त रोगी की अवस्था की कल्पना की। उसे भय हुआ कि उसे भी एक तपेदिक रोगी की पीड़ा भोगनी पड़ सकती है। भय और दुराशा के तीव्र चिन्तन ने उसके मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह कल्पना प्राय: वास्तविकता में ही परिणत हो गयी।

हम उस नौसिखिये साइकिल-चालक के प्रसंग को स्मरण कर सकते हैं, जो गिर जाने के काल्पनिक भय के कारण ही अन्तत: नाली में गिर पड़ा था। परीक्षा-भय से अपनी स्मरण-शक्ति गँवा बैठने वाले बालक की कहानी भी ठीक ऐसी ही है। जब हम बुराइयों या दोषों का तीव्र चिन्तन करने लगते हैं, तो वे हमारे अन्तर्मन में अंकित होकर धीरे-धीरे अभिव्यक्त होने लगते हैं। भय के इस बीज का फल हमें बुरे स्वास्थ्य, कठिनाइयों तथा दु:ख-कष्ट के रूप में प्राप्त होता है।

जो बातें अज्ञात रूप से अवचेतन मन में अंकित हो जाती हैं, वे एक-न-एक दिन अवश्य ही प्रकट होंगी। किसी चीज के प्रति तीव्र घृणा या तिरस्कार के भाव के साथ उसका सतत् चिन्तन हमारे मन में बुरे फल देने वाले बीज बो सकता है। यह उस बुराई की जड़ें जमाने में सहायक हो सकता है, जिसका हम उन्मूलन करना चाहते थे। जिसे हर बाहर निकाल डालना चाहते थे, वही हमें अपने आप में डुबा सकता है।

संजय पिन निगल गया :

कन्नड़ भाषा की एक लघु पुस्तक 'भय-एक विश्लेषण' में डॉ. शिवराम एक घटना का वर्णन करते हैं-

'एक विचित्र घटनाक्रम में संजय नामक एक धनी युवक एक पिन निगल गया। यदि वह पिन आँतों में कहीं फँस जाती, तो इससे बड़ी भारी समस्या आ जाती। फिर ऑपरेशन आवश्यक हो जाता, जो घातक भी हो सकता

था। मैंने उसे हर छह घण्टे बाद एक्स-रे कराने का निर्देश दिया, ताकि यह पता चल सके कि पिन मलत्याग के दौरान बाहन निकल गयी है या नहीं। चौथी बार एक्स-रे कराने पर उसमें पिन का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। मैंने संजय से पूछा, ''क्या तुमने उस पिन के लिए मल की छान-बीन की?'' संजय ने निर्भयतापूर्ण उत्तर दिया, ''कौन चिन्ता करे? किसे परवाह है कि वह पिन है भी या नहीं? खैर, एक्स-रे में तो उस पिन का कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ा।''

'वह बिल्कुल आश्वस्त और निश्चिन्त था कि यदि पिन आँतों में फँसी भी हो, तो उसे शल्यक्रिया द्वारा निकाला जा सकता है। उसकी निश्चिन्तता के कारण ही भय तथा चिन्ताजनित कोई जटिलता नहीं उत्पन्न हुई। उसके निर्भय मनोभाव के कारण ही आँतों ने स्वाभाविक प्रक्रिया से मलोत्सर्जन के साथ उस पिन को बाहर निकाल दिया। यदि वह चिन्तित रहता, तो शायद भय के कारण ही वह पिन आँतों में फँस जाती।'

(क्रमशः)

पृष्ठ 24 का शेष

क्षत्रिय का धर्म-अन्याय का प्रतिकार

लिए बुलाया। दुर्गादास ने दरबार में पहुँचकर सिंहासन पर विराजित महाराजा जसवंतसिंह को प्रणाम किया और सिंह की भाँति सारे दरबार को देख खड़ा हो गया। महाराजा जसवंतसिंह जी व्यक्तित्व गुणों के पारखी थे। महाराजा ने उसे गौर से देखा, उसके तेजस्वी मुख मण्डल, उसकी चाल, पैनी दृष्टि, बलिष्ठ भुजाएँ, विशाल वक्षस्थल देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। मन ही मन विचार किया लड़का तो होनहार है....।

किन्तु प्रकट रूप में कड़क कर पूछा-'क्या नाम है तुम्हारा?' 'दुर्गादास राठौड़।' 'उम्र?' 'सत्रह वर्ष।' 'गाँव?''लुणावा।' 'पिता का नाम?'..'चुप क्यों हो..बोलो।'

'महाराज! जिस अपराध की सजा देने आपने मुझे यहाँ बुलाया है, उसकी चर्चा करें तो ठीक रहेगा,' दुर्गादास ने सधी हुई वाणी में उत्तर दिया।

'नहीं....हम तुम्हारे पिता का नाम जानना चाहते हैं।' 'श्री आसकरण राठौड़।' 'कहाँ के?' 'सालवा के।'

महाराजा जसवंतसिंह ने जब अपने प्रधान आसकरण की ओर देखा तो वह गर्दन नीचे करके बैठ गए।

राजा ने फिर दुर्गादास से पूछा-'तो तूने राइके को मारा है?' 'जी हाँ हुजूर! राइके के ऊंट मेरे व गरीब किसानों के खेतों को चर रहे थे। मैंने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की....किन्तु उन्होंने सत्ता मद में चूर होकर मुझ पर आक्रमण कर दिया। अन्याय का प्रतिकार करना प्रत्येक क्षत्रिय का धर्म होता है। अन्नदाता! उनके इस कृत्य से शासन का भी अपमान हो रहा था। अपनी जान बचाने के लिए मैंने उस पर वार किया...और वह धराशायी हो गया, शेष भाग खड़े हुए। अब आप जो भी सजा दें मुझे स्वीकार है।'

महाराजा ने गर्व से उसे निहारा, उनकी पारखी नजरें दुर्गादास के गुणों को ढूंढ रही थी। 'हम जो भी सजा देंगे तुम्हें मंजूर है।' 'हाँ अन्नदाता' 'ठीक है आज से तुम हमारे अंगरक्षक के रूप में काम करोगे। ...बोलो! स्वीकार है, तुम्हें।' 'अन्नदाता....।' दुर्गादास की आँखें छल छला गई। वह आगे बढ़कर राजा के चरणों में गिर गया। राजा ने उसे उठाया और गले से लगा लिया। दरबार में सबके सामने आसकरण जी की ओर देखकर बोले-'यह बालक एक दिन मरुधरा का रक्षक बनेगा।' सभी सभासद गद् गद् हो गए। यह समाचार जब गाँव लुणावा में पहुँचा तो सभी ग्रामवासियों को अपने दुर्गा पर बहुत गर्व हुआ। माँ नेतकुंवर तो दौड़कर देवी के मन्दिर में गई, कहने लगी.... 'माँ भगवती आज तूने मेरा सपना साकार कर दिया। ....अब तुम्हारा दुर्गा अपनी प्रतीज्ञा को निश्चित ही पूरी करेगा। ...क्षत्रिय धर्म का पालन कर मरुधरा की सेवा करेगा।' (वास्तव में सब ने देखा वीर दुर्गादास ने अपना संपूर्ण जीवन मरुधरा की सेवा में समर्पित कर गीता में वर्णित क्षात्रधर्म के सभी गुणों का पालन करते हुए अपनी जीवन यात्रा समाप्त की।) **'जय क्षात्रधर्म'**

विचार-सरिता

(षट् षष्टिः लहरी)

जब तक साधक को यथार्थ बोध की उपलब्धि नहीं होती है तब तक भटकाव बन्द नहीं हो सकता। ठूंठे में कल्पित पुरुष के कारण ही देखने वाले को भय लगता है, जेवरी के यथार्थ ज्ञान के अभाव में ही देखने वाले को सर्प की प्रतीति हो रही है और उसे भगाने के लिये वह उपाय करता है। फिर भी वह मिथ्या सर्प कहीं जाता नहीं है। प्रकाश होते ही जेवरी का वास्तविक ज्ञान होते ही अयथार्थ-ज्ञान की निवृति हो जाती है और सर्प के काटने का भय भी तत्क्षण चला जाता है। ऐसे ही ब्रह्मरूपी अधिष्ठान का ज्ञान होते ही जगत् का दुःख व उसकी अलग सत्ता होने का अयथार्थ ज्ञान भी भाग खड़ा होता है। विचार सागर में आया है-

है जिहिं जग जाने बिना, मानहु जेवरी साँप।
नशे भुजंग जग जिहिं लहै, सोहं आपो आप।।

अर्थात् अपने आपको यथार्थ ज्ञान हुए बिना जगत् भी जेवरी के सर्प की भाँति दुःख रूप ही रहेगा। इसलिए जब तक देह में श्वासों की प्रक्रिया चल रही है तभी तक अपने स्वरूप का बोध करके जीते जी मुक्ति पा लेनी चाहिए। जिनके चित्त परमात्म चिन्तन में लगे हुए हैं, जिनके प्राण उन्हीं में रम रहे हैं, जो परस्पर परमात्म तत्व का बोध कराते हुए सदा परमात्मा की ही चर्चा करते हैं तथा उसी से ही संतुष्ट रहते हैं, और उसी में रत रहते हैं ऐसे जीवनमुक्त महापुरुषों का जीवन सार्थक हुआ है। एकमात्र ब्रह्मज्ञान में ही जिनकी निष्ठा है तथा जो सदा परमात्मज्ञान का ही विचार करते हैं, उन पुरुषों को ही वह जीवनमुक्ति प्राप्त होती है और देह-त्याग के अनन्तर विशुद्ध-मुक्ति या विदेह-मुक्ति की प्राप्ति होती है। वेदानुकूल व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष की दृष्टि में ज्यों का त्यों स्थित हुआ यह जगत् विलीन हो जाता है और आकाश के समान शून्य प्रतीत होने लगता है, वह जीवनमुक्त कहलाता है। जाग्रत अवस्था में भी सुषुप्तिवत् जो राग-द्वेष एवं हर्ष-शोकादि से शून्य हो जाता है, उसे जीवनमुक्त कहते हैं।

जो पुरुष निर्विकार आत्मा में सुषुप्त की भाँति स्थित रहता हुआ भी अविद्यारूपिणी निद्रा का निवारण हो जाने से सदा जागता रहता, जिसकी जाग्रत अवस्था शून्य में परिणित हो गई है और जिसका ज्ञान सर्वथा वासना-रहित है, वह जीवनमुक्त कहलाता है। जिसकी ब्रह्मभावनी बुद्धि में कोई भी न अपना है न पराया है तथा सबमें आत्मभाव के कारण अपना आप का होना देखता है, वह जीवनमुक्त कहलाता है। जिससे लोगों को भय नहीं होता और जिसको लोगों से भय नहीं होता ऐसा सरल और मृदु बनकर जो प्रारब्ध अनुसार विचरता है वह जीवनमुक्त की श्रेणी में आता है। जिसकी संसार के प्रति सत्यता-बुद्धि नष्ट हो गयी है, जो दूसरों की दृष्टि में अवयवों से युक्त होने पर भी वास्तव में अवयवरहित है तथा जो चित्तयुक्त होकर भी वस्तुत: चित्त से शून्य है, वह जीवनमुक्त है। गुप्तसागर नामक ग्रन्थ में जीवनमुक्त महात्मा के बारे में लिखा है कि-

जीवनमुक्त भये जग में जिन आतम पूर्ण ब्रह्म निहारया।
पिण्ड अरू प्राण के संयोगहुते, भेदअरू भ्रान्ति का मूल उखारया।।
प्रारब्ध संयोग से देह वहै नित संचित और आगामी को जारया।
शुष्क तृणवत भरमत है तन, ईष्ट अनिष्ट अदृष्ट अधारया।।

जीवनमुक्त महात्मा की दृष्टि में पूर्ण ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की अलग से कोई सत्ता नहीं रह जाती है। यह जगत भी उसकी दृष्टि में ब्रह्मविलास हो जाता है। अपनी ब्रह्मज्ञान की अग्नि से संचित और आगामी अर्थात् क्रियमाण कर्म तो दग्ध हो जाते हैं तथा प्रारब्ध के वेग से अब निरासक्त भाव से शुभ क्रियाएँ होती रहती हैं। जिस प्रकार सूखा हुआ घास का तिनका हवा के झौंके से कभी इधर और कभी उधर उड़ता रहता है, ऐसे ही जीवनमुक्त महात्मा का शरीर भी प्रारब्ध रूपी हवा के वेग से विचरता हुआ प्रतीत होता है। उस ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में ईष्ट और अनिष्ट की परिभाषा भी समाप्त हो जाती है। जीवनमुक्त महापुरुष का जीवन अहंकार शून्य होता है इसलिए उसमें कर्तृत्वभाव के अभाव के कारण कर्तापने का अभाव होने से वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता

है। जब कर्ता ही नहीं रहा तो भोक्ता कहाँ से होगा। इसलिए आवागमन से मुक्त पुरुष का अन्तिम श्वास ही विदेहमुक्ति का हेतु हो जाता है।

इसी संदर्भ में एक फकीरी है जिसका उल्लेख करना भी मैं यहाँ उचित समझता हूँ अत: उस फकीरी में जीवनमुक्ति का वर्णन किस प्रकार आया है उसे भी देख लेते हैं।

फकीरी पाया पद निर्वाण।
जन्म मरण का संशय मेट्या, मेट दिया जम डाण।। टेक।।
सत असत् का किया निवेड़ा, उर बिच ऊगा भाण।
भेद 'भ्रान्ति' का मूल उखार्‌या, लिया निजानंद छाण।।
संचित और आगामी को जारया, अहं ब्रह्म निज जाण।
शुष्क तृणवत भरमत है तन, पारब्ध पवना पांण।।
मुर्दा मस्त नहीं कोई किया, केवल चलता पाण।
सप्तभौम का गदरा कीना, सूता चादर तांण।।
आपो आप व्यौम सम पूर्ण, हुई बन्ध की हाण।
जोरावर निज अनुभव मस्ती, छाई कर कल्याण।।

उपरोक्त फकीरी को यहाँ लिखने का एक ही आशय है कि साधक को चाहिए कि जब तक उसकी निष्ठा अपने स्वरूप में नहीं पैठ जाय तब तक उसे विश्रांति कैसे मिल सकती है। जीवन का तो एक ही लक्ष्य होना चाहिए कि यह उसका अन्तिम जन्म बन जाए। इस जन्म के बाद फिर किसी कोख में गिरने का अर्थ है कि अनमोल हीरा पाकर भी हमने उसे रेत में गिरा दिया। साधक के जीवन की अन्तिम परिणिति इसी में है कि वह अपने निजानंद की अनुभूति से अभिभूत होकर पूर्ण परमानंद की प्राप्ति कर ले। जिन महानुभावों ने इस प्रकार का जीवन जीकर अपने निजानंद के आनन्द से सम्पर्क में आने वाले अन्य जिज्ञासुओं को भी आनन्दित किया है और प्रारब्ध के अन्त तक लोगों को कृतार्थ करते रहे हैं, ऐसे महापुरुषों के चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम।

अहं ब्रह्मास्मि! अहं ब्रह्मास्मि!! अहं ब्रह्मास्मि!!!

पृष्ठ 5 का शेष

समावार संक्षेप

अजासर, जैसलमेर, मूलाना, लेखावाड़ा, अहमदाबाद शहर, खिजड़ियारी, सेंथी, अभिमन्यु पार्क सारोली (सूरत), भलूरी, हदां, विनोबा भावे नगर (जयपुर) में भी कार्यक्रम आयोजित हुए। इस अवधि में जहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविर थे, वहाँ शिविरों में भी जयन्ती मनाई गई।

शिविर सम्पन्न :

कोविड-19 महामारी के कारण व्यापार, उद्योग धन्धों, रोजगार आदि में तो विपरीत प्रभाव पड़ा ही है, साथ ही त्योहारों, जयन्तियों, स्नेह मिलनों, शिविरों आदि के आयोजन में भी रुकावट आ गई थी। अब धीरे-धीरे महामारी का असर कम होने पर आवश्यक निर्देशों का पालन करते हुए, सभी कार्य परिस्थिति अनुरूप प्रारम्भ हुए हैं। लम्बे समय तक संघ के शिविर भी नहीं हो पाए थे पर ग्रामीण इलाकों में जहाँ परिस्थिति अनुकूल थी, वहाँ शिविर होने लगे हैं। सन् 2021 के जनवरी माह में काणेटी (अहमदाबाद) व मोरचन्द (भावनगर) में शिविर सम्पन्न हुए। फरवरी माह में सेला (बाड़मेर), जेजूरी (पूना), जोगीदास का गाँव (जैसलमेर) और भाटियों का खेड़ा केसरपुरा (जैसलमेर) में शिविर हुए। मार्च माह में पांचोटा (जालौर) में शिविर हुआ। जुलाई व अगस्त माह में बेलवा (जोधपुर), कोटड़ा नायाणी (राजकोट), सेतरावा (जोधपुर), धंधूका (अहमदाबाद), मुंगेरिया (बाड़मेर), सुमेल गिरी (पाली), साकड़ा (जैसलमेर), भोजराजसिंह की ढाणी (जैसलमेर), अजासर (जैसलमेर), अलाय (नागौर), बैर का थान (बाड़मेर), झिंझनियाली (जैसलमेर), सूरज (गुजरात), कीलवा (जालोर), सिमला (चूरू), देवीकोट (जैसलमेर), थलसर (गोहिलवाड़) और गागूंदरा (बनासकांठा) में शिविर सम्पन्न हुए। भैंसाणा (साबरकांठा) में बालिका शिविर तथा काणेटी में बाल शिविर सम्पन्न हुए। श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का एक शिविर मार्च माह में सालासर (चूरू) में तथा एक शिविर अगस्त माह में नापासर (बीकानेर) में हुआ। वर्चुअल माध्यम से अनेक स्थानों पर इस अवधि में शाखाएँ चलती रही। अब जहाँ परिस्थिति अनुकूल है वहाँ मैदानी शाखाएँ भी प्रारम्भ हो चुकी हैं। ❑

अपनी बात

व्यक्ति एक भूख है, एक खालीपन, एक रिक्तता, जो हर चीज के बाद फिर आगे आकर खड़ी हो जाती है। एक क्षितिज की तरह। देखते हैं, आकाश छूता हुआ दिखता है जमीन को। चलते जाएँ, लगता है यहीं रहा पास-दस मील होगा, बीस मील होगा। अभी पहुँच जाएँगे। पहुँचते हैं और पाते हैं कि आकाश बीस मील आगे हट गया है। अगर वहाँ होता तो हट कैसे सकता था। उस तरफ हमारे चलने से आकाश के हटने का कोई सम्बन्ध नहीं है। आकाश कभी भी कहीं भी पृथ्वी को नहीं छूता है। सिर्फ छूता हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी गोल है इसलिए आकाश छूता हुआ दिखाई देता है। आकाश कहीं भी पृथ्वी को छूता नहीं है।

मनुष्य की वासनाएँ गोल हैं और इसलिए आशा उपलब्धि बनती हुई दिखाई पड़ती है, पर कभी बनती नहीं। मनुष्य की वासनाएँ वर्तुलाकार हैं, जैसे पृथ्वी गोल है और आशा का आकाश चारों ओर है, तो ऐसा लगता है, ये रहे दस मील। अभी पहुँच जाऊँगा जहाँ आशा उपलब्धि बन जाएगी, जहाँ जो मैंने चाहा है, वह मिल जायेगा और मैं तृप्त हो जाऊँगा। दस मील चलकर पता चलता है कि क्षितिज आगे चला गया। आकाश आगे बढ गया, वह अब और आगे जाकर छू रहा है। फिर हम बढते हैं, और जिन्दगी भर बढते रहते हैं तथा अनेक जिन्दगी बढते रहते हैं।

मजे की बात यह है कि हमें यह कभी ख्याल नहीं आता कि दस मील पहले जो आकाश छूता हुआ दिखायी पड़ता था, वह फिर दस मील आगे दिखायी पड़ने लगा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आकाश छूता ही नहीं। अन्यथा आकाश हमसे डरकर भाग रहा हो और जमीन को छूने के स्थान बदल रहा हो, ऐसा तो नहीं हो सकता।

फिर और बड़े मजे की बात है कि जो हमसे दस मील आगे खड़े हैं वे भी भाग रहे हैं और जहाँ हमें लगता है कि आकाश छूता है, वहाँ खड़े लोग भी और आगे भाग रहे हैं। उन लोगों से भी जो आगे हैं, जहाँ उन्हें लगता है कि आकाश छूता है, वे भी भाग रहे हैं। जब सारी पृथ्वी भाग रही हो, तो जिन्हें थोड़ा भी विवेक है, उन्हें यह स्मरण आ जाना कठिन नहीं है कि आकाश पृथ्वी को कहीं छूता ही नहीं। छूता हुआ सिर्फ मालूम पड़ता है। आशा कहीं उपलब्धि नहीं बनती। वासना कहीं तृप्ति नहीं बनती, कामना कहीं पूर्ण नहीं होती, सिर्फ छूती हुई, होती हुई मालूम पड़ती है और आदमी दौड़ता चला जाता है।

इसलिए परिग्रह के सम्बन्ध में, वस्तुओं या मनुष्यों पर मालकियत के सम्बन्ध में अपने अतीत के अनुभवों को पूरा-का-पूरा देख लेना जरूरी है। अतीत में हमने संग्रह किया है वस्तुओं का, मनुष्यों का और उन पर अपनी मालकियत भी जताई है, पर क्या तृप्ति हो गई? क्या सभी आशाओं की उपलब्धि हो गई? अतीत के अनुभवों को गहराई से समझेंगे तो अवश्य स्पष्ट हो जाएगा कि दस मील चलकर आ गए पर आशा की उपलब्धि नहीं हुई। समझ में आ जाए तो अपरिग्रह भी सफल हो सकता है लेकिन हम धोखा देने में कुशल हैं। दूसरे को धोखा देने में उतने कुशल नहीं हैं जितना अपने को धोखा देने में कुशल हैं। दूसरे का धोखा देना बहुत मुश्किल है पर अपने को धोखा देना बहुत आसान है। हम अपने को धोखा दिए चले जाते हैं। जैसे ही कुछ मिलता है, वह तत्काल बेकार हो जाता है क्योंकि रिक्तता, खालीपन तुरन्त आ खड़ा होता है। इसलिए संग्रह से न बंधें, अपरिग्रही बनने की ओर संघ की साधना के साथ कदम मिलाकर चलें। न्यूनतम आवश्यकताओं में जीना जो संघ सिखाता है, वह अपरिग्रह में ही प्रवेश क्रिया है।

❑

DIPR में नव नियुक्ति पर हार्दिक शुभकामनाएं

श्री क्षत्रिय युवक संघ की कर्नाटक में नींव रख कर हमारे जैसे अनेक युवा भाईयों को राह देने वाले बड़े भाई देवेन्द्र प्रताप सिंह जी वाडिया को DIPR में PWD जैसे अहम महकमे की जिम्मेदारी मिलने पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

देवेंद्र प्रताप सिंह

दुर्जन सिंह भाड़ली, सुजान सिंह चौराऊ, इन्द्र सिंह खाखरवाडा
कमल सिंह मेवी, राम सिंह संग्रामसर, विजयप्रताप सिंह रायरा
जसवंत सिंह चौराऊ, स्वरूप सिंह बांवरला, योगेंद्र सिंह रायरा
कैलाश सिंह गुडांगिरी, प्रीतिपाल सिंह आंतरोली, चावंड सिंह चावंडिया
नेपाल सिंह गुडांगिरी, बालाजी सिंह बैंगलोर, देवेंद्र प्रताप सिंह भीमालिया
मानवेंद्र सिंह मंडोवरी, अर्जुन सिंह चौराऊ, जितेन्द्र सिंह देवली

Chauhan Enterprises

Ravindra Singh Chauhan
94141 67862
98290 71243

Distributor for Udaipur Zone

MERINO
Laminates & Plywood
Full Display Sheets Available Here

SINCE 1895
SRG
PLY & BOARD
STRONG • RELIABLE • GENUINE

BISON PANEL
Cement Bonded Particle Board

Shatrushal Singh Chauhan
(Sunny)
94141 62768
82098 07920

PLYWOOD | LAMINATE | FLUSH DOOR | VENEER

18-19, Jaldarshan Market, Gulab Bagh Road, Udaipur-313001
Call : 99281 47511 (O) | Email : ravichauhan22@yahoo.com

कान सिंह परावा को भारतीय जनता युवा मोर्चा, जालोर की कार्यकारिणी में सांचौर विधानसभा क्षेत्र के मंत्री पद का दायित्व मिलने पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं...

कान सिंह परावा

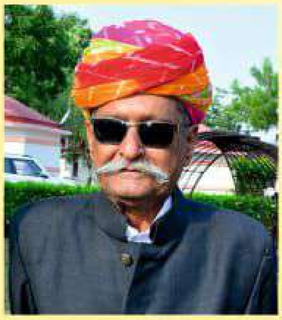

-: शुभेच्छु :-

गजे सिंह चारनीम

GOPAL METAL INDUSTRIES

Stockist Dealer in : Stainless Steel, Copper Brass, Aluminium, Phospher, Bronze, Gun Metal, Rods, Pipes, Sheets, Plates, Zinc, Nickle etc.

#5-184/1, Post Office Lane, Fathenagar, Hyderabad -500 018 T.S.

E-mail : gopalmetal40@gmail.com

अक्टूबर सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 10

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह